ART ORBIT

(A MULTILINGUAL, MULTIDISCIPLINARY MONTHLY JOURNAL, ISSN: 3107-670X)

Editor-in-Chief
Shivani Shah

Associate Editor
Kushagra Jain

Editor-in-Chief and Publisher:
Shivani Shah
Email: artorbit09@gmail.com
Mobile: +91 8619993231
Address: 187, Partapur Road, Opp. Rephral Hospital, Bagidora, District Banswara, Rajasthan – 327601

Associate Editor
Kushagra Jain

Editorial Members

- Dr. Rishika Verma, Assistant Professor, Department of Philosophy, School of Humanities and Social Sciences in Hemavati Nandan Bahuguna Garhwal University, Srinagar Garhwal, Uttarakhand, rishikaverma@hnbgu.ac.in , https://hnbgu.ac.in/node/9192
- Mr. Raj Kumar Singh, Assistant Professor, Institute of Fine Arts, School of Creative & Performing Arts, CSJM University, Kanpur, raj@csjmu.ac.in, https://csjmu.ac.in/all-faculty/raj-kumar-singh/
- Ms. Jyoti Singh, Assistant Professor, Fashion Design Dept., School of Journalism & Liberal Arts, DBUU, Dehradun, Fd.jyoti@dbuu.ac.in, https://www.dbuu.ac.in/academics/faculties.php?utm_source=Website&utm_medium=DBUU&utm_campaign=Admission2026
- Dr. manisha, Assistant Professor, Jain University, Banglore, rajawatmanisha@jainuniversity.ac.in, jainuniversity.ac.in

Advisory Board

- Mr.Santosh Kumar, Head of Department, Faculty of Fine Arts & Fashion Design, Ras Bihari Bose Subharti University, Dehradun, https://rbbsu.edu.in/faculty-list

Language Editors / Translators

- Ms. Nishtha Gupta – Hindi

ART ORBIT JOURNAL (Peer Review)
Copyright © 2025 by AUTHOR
All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means without written permission from the Publisher.

संपादकीय

कला केवल मानव इतिहास की मूक साक्षी नहीं, बल्कि समाज के अंतर्द्वंद्वों, सांस्कृतिक अस्मिता और आत्मिक चेतना की सतत प्रवाहमान अभिव्यक्ति है। आदिकाल से लेकर समकालीन समय तक कला ने अपने रूप, माध्यम और अभिव्यक्ति की तकनीकों में निरंतर परिवर्तन किए हैं, किंतु उसकी मूल आत्मा–मानवीय संवेदना, सृजनशीलता और जीवनबोध–आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है। **'आर्ट ऑर्बिट'** का यह अंक कला की इसी बहुआयामी यात्रा को ऐतिहासिक विरासत और समकालीन दृष्टि, दोनों के आलोक में समझने का एक विनम्र प्रयास है।

भारतीय कला का इतिहास सभ्यता के उषाकाल से ही अमूर्तन, प्रतीकात्मकता और आध्यात्मिक चिंतन से समृद्ध रहा है। सिंधु घाटी सभ्यता की मुहरों पर अंकित पशुपति की आकृतियाँ तथा कांस्य निर्मित प्रसिद्ध *डांसिंग गर्ल* इस तथ्य के सशक्त प्रमाण हैं कि हजारों वर्ष पूर्व भी हमारी दृश्य संस्कृति अत्यंत परिपक्व, कल्पनाशील और बहुआयामी थी। यही प्रतीकात्मक परंपरा आगे चलकर भारतीय दृश्य कलाओं में अमूर्त अभिव्यक्ति का आधार बनी, जहाँ *बिंदु*, *मण्डल* और अन्य ज्यामितीय संरचनाएँ ब्रह्मांडीय ऊर्जा, आध्यात्मिक संतुलन तथा आंतरिक शांति के प्रतीक के रूप में विकसित हुईं।

भारतीय लोक एवं शिल्प कलाएँ हमारी सांस्कृतिक विविधता की जीवंत पहचान हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश के लोकपर्व–मकर संक्रांति, जिउतिया, गोवर्धन (गोधना) पूजा और लोकआस्था का महापर्व छठ–सामाजिक समरसता तथा सांस्कृतिक निरंतरता के सशक्त उदाहरण हैं। कोहबर लेखन जैसी भित्ति चित्रण परंपराएँ वैवाहिक जीवन के मंगल और समृद्धि का प्रतीक हैं, जबकि वाराणसी के खुजवां के लकड़ी के खिलौने, औरंगाबाद का टेराकोटा शिल्प तथा भदोही का विश्वविख्यात कालीन उद्योग स्थानीय शिल्पकौशल को वैश्विक पहचान प्रदान करते हैं। इसी प्रकार चित्रकूट परिक्षेत्र का शिजर पत्थर शिल्प, काष्ठ शिल्प और बाँस से निर्मित वेडू शिल्प यह दर्शाते हैं कि कला केवल सौंदर्यबोध का माध्यम नहीं, बल्कि सामुदायिक पहचान और सांस्कृतिक स्मृति की वाहक भी है।

समय के साथ भारतीय कला ने अपनी परंपराओं को संजोए रखते हुए वैश्विक कलाविमर्शों से भी सार्थक संवाद स्थापित किया है। समकालीन कला के क्षेत्र में नलिनी मलानी जैसी अग्रणी कलाकारों ने चित्रकला की पारंपरिक सीमाओं का विस्तार करते हुए वीडियो इंस्टॉलेशन, शैडो प्ले और डिजिटल एनीमेशन जैसे बहुमाध्यमीय प्रयोगों के माध्यम से अभिव्यक्ति के नए आयाम खोले हैं। विभाजन की त्रासदी, स्त्री-अस्मिता, मानवाधिकार और सामाजिक न्याय जैसे विषयों को केंद्र में रखकर उन्होंने यह सिद्ध किया कि कला केवल सौंदर्य का सृजन नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और मानवीय संवेदना का प्रभावशाली माध्यम भी है।

कला की यह यात्रा दृश्य माध्यमों तक सीमित नहीं है; यह संगीत, नृत्य और प्रदर्शन कलाओं में भी समान रूप से प्रवाहित होती है। उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत एवं नृत्य की घराना परंपरा–चाहे वह गायन के ग्वालियर, किराना और आगरा घराने हों, वादन के सेनिया और मैहर घराने हों अथवा कथक के विविध घराने–गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से अनुशासन, परंपरा और नवाचार का अद्भुत संतुलन प्रस्तुत करते हैं। यही परंपराएँ भारतीय सांस्कृतिक विरासत की जीवंतता को आज भी बनाए हुए हैं।

वर्तमान समय में तीव्र शहरीकरण, बाजारीकरण और तकनीकी परिवर्तन के बीच कला के संरक्षण, संवर्धन और नवाचार की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है। कला को केवल संग्रहालयों तक सीमित रखने के बजाय उसे शिक्षा, डिजिटल दस्तावेजीकरण, शोध तथा रोजगारोन्मुखी योजनाओं–जैसे *एक जिला एक उत्पाद* और *कौशल विकास* कार्यक्रमों–से जोड़ना समय की मांग है। इससे न केवल हमारी सांस्कृतिक धरोहर सुरक्षित रहेगी, बल्कि कला नई पीढ़ी के लिए प्रासंगिक, जीवंत और आत्मनिर्भरता का आधार भी बनेगी।

हमें विश्वास है कि **'आर्ट ऑर्बिट'** का यह अंक आपको भारतीय कला की ऐतिहासिक गहराइयों, लोक परंपराओं और समकालीन सृजनशीलता से परिचित कराते हुए नए विमर्शों की ओर प्रेरित करेगा। कला की यह विविधरंगी यात्रा आपको अतीत के गौरव, वर्तमान की चुनौतियों और भविष्य की संभावनाओं से एक साथ जोड़ने का माध्यम बने–इसी आशा के साथ यह अंक आपके समक्ष समर्पित है।

– संपादक

TABLE OF CONTENTS

	आलेख का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या	आलेख की भाषा
1	**Vibrant Folk Arts and Traditions of Eastern Uttar Pradesh: Preservation, Promotion, and Innovation** *(पूर्वी उत्तर प्रदेश की जीवन्त लोक कलाएँ एवं परम्पराएँ: संरक्षण, संवर्धन और नवाचार)*	डॉ. मधु शर्मा (Dr. Madhu Sharma)	75–82	हिंदी
2	**Nalini Malani's Contribution to Contemporary Indian Art** *(भारतीय समकालीन कला में नलिनी मलानी का योगदान)*	मेराज अहमद एवं प्रो. विनीता यादव (Meraj Ahemad & Prof. Vinita Yadav)	83–86	हिंदी
3	**Symbolic Traditions in Indian Visual Arts: In the Context of Abstract Art** *(भारतीय दृश्य कलाओं में प्रतीक परंपराएँ : अमूर्त कला के संदर्भ में)*	ज्योत्स्ना (Jyotsna)	87–90	हिंदी
4	**Family Tradition and the Art of Singing, Instrumental Music, and Dance: A Detailed Comparative Study** *(घराना परंपरा और गायन-वादन-नृत्य कला : एक विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन)*	श्रेया सुचेता पटवर्धन एवं प्रो. डॉ. संगीता बापट (Shreya Sucheta Patwardhan & Prof. Dr. Sangeeta Bapat)	91–95	हिंदी
5	**Visual Culture of Indus Valley Civilizations: A Case Study of Harappan Art Objects in the National Museum, New Delhi**	गौरव कुमार (Gaurav Kumar)	97–101	अंग्रेज़ी

https://artorbit.in/
Art Orbit - Volume 02, No 03, March 2026,, PP 75-82 (Total PP 08)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/EXIT6166

VIBRANT FOLK ARTS AND TRADITIONS OF EASTERN UTTAR PRADESH: PRESERVATION, PROMOTION, AND INNOVATION (पूर्वी उत्तर प्रदेश की जीवन्त लोक कलाएँ एवं परम्पराएँ: संरक्षण, संवर्धन और नवाचार)

Dr. Madhu Sharma[a]*

[a] Guest Lecturer, Department of Fine Arts, Dr. Shakuntala Mishra National Rehabilitation University, Lucknow

[a]Email: sharma16madhu@gmail.com

Abstract

The religious and cultural spirit of any society is found in its folk arts and traditions. These folk arts and traditions are passed down from generation to generation in the usual way. They are not just limited to memories of the past but are constantly evolving, dynamic, and present in a lively form among us in the present. Folk arts and traditions of Eastern Uttar Pradesh, like folk tales, folk songs, folk dances, folk theater, religious ceremonies, rituals, as well as collective social consciousness, beliefs, struggles, and sense of beauty, all get expressed through them. Urbanization, globalization, industrialization, and modern technology have posed a serious threat to the preservation of folk arts and traditions.

In the present research paper, *preservation* does not imply keeping the folk arts and traditions of Eastern Uttar Pradesh in a rigid or static form. Rather, it emphasizes sustaining them in a living manner by preserving their original essence and spirit while allowing them to evolve with changing times. The process of *promotion and development* requires the active participation of cultural institutions, educational systems, government policies, and local communities. Innovation consistently revitalizes folk arts and traditions by connecting them with contemporary contexts, making them more relevant and meaningful for younger generations. Through contemporary art, digital media, performing arts, and academic curricula, innovative approaches are creating new perspectives for the preservation and promotion of folk arts and traditions. Preservation, promotion, and innovation are complementary to one another. Only through their balanced integration can folk arts and traditions remain vibrant and sustainable over the long term. If folk arts and traditions are regarded merely as museum artifacts, they will lose their spirit and vitality. Therefore, it is essential to keep folk arts, traditions, and culture as active components of social life so that cultural continuity and identity can be preserved.

किसी भी समाज की धार्मिक एवं सांस्कृतिक आत्मा लोक कलाओं एवं परम्पराओं में ही होती हैं। ये लोक कलाएँ एवं परम्पराएँ परम्परागत रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती रहती है यह केवल अतीत की स्मृतियों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वर्तमान में निरंतर परिवर्तनशील, गतिशील होते हुए जीवन्त स्वरूप में हमारे बीच विद्यमान हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश की लोक कलाएँ एवं परम्पराएँ जैसे- लोक कथाएँ, लोक गीत, लोक नृत्य, लोक नाट्य, धार्मिक संस्कार, रीति-रिवाज साथ ही सामाजिक सामूहिक चेतना, विश्वास, संघर्ष और सौंदर्यबोध को अभिव्यक्त करती हैं। शहरीकरण, वैश्वीकरण, औद्योगीकरण, और आधुनिक तकनीक के प्रभाव से लोक कलाओं और परम्पराओं के समक्ष संरक्षण का गंभीर संकट उत्पन्न हुआ है।

प्रस्तुत शोध पत्र में संरक्षण का अर्थ पूर्वी उत्तर प्रदेश की लोक कलाओं एवं परम्पराओं को जड़ रूप में सुरक्षित करना नहीं, बल्कि उनके मौलिक स्वरूप और आत्मा को संयोजित करते हुए उन्हें समयानुसार जीवित रखना है। संवर्धन की प्रक्रिया में सांस्कृतिक संस्थाएँ, शिक्षा, सरकारी नीतियाँ और सामाजिक समुदाय की सक्रिय भागीदारी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। नवाचार सदैव लोक कलाओं एवं परम्पराओं को आधुनिक संदर्भों से जोड़कर नई ऊर्जा प्रदान करता है, जिससे वे नई पीढ़ी के लिए तर्कसंगत बन सकें। समकालीन कला, डिजिटल माध्यम, प्रदर्शन कला और शैक्षणिक पाठ्यक्रमों के माध्यम से लोक कलाओं एवं परम्पराओं का नवाचारपूर्ण नया दृष्टिकोण संभव हो रहा है। संरक्षण, संवर्धन और नवाचार एक-दूसरे के पूरक हैं। इनके संतुलित समन्वय से ही लोक कलाएँ और परम्पराएँ लम्बे समय तक जीवंत रह सकती हैं। यदि लोक कलाओं और परम्पराओं को केवल संग्रहालय की वस्तु मान लिया गया, तो उनकी आत्मा एवं जीवंतता समाप्त हो जाएगी। अतः आवश्यक है कि लोक कलाओं, परम्पराओं और संस्कृति को सामाजिक जीवन का सक्रिय हिस्सा बनाए रखा जाए, जिससे सांस्कृतिक निरंतरता और पहचान सुरक्षित रह सके।

Keywords: Folk art, tradition, preservation, promotion, innovation.

लोक कला, परम्परा, संरक्षण, संवर्धन, नवाचार।

---

* Corresponding author.

Art Orbit - Volume 02, No 03, March 2026,, PP 75-82 (Total PP 08)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/EXIT6166

चित्र सं0 01 लोक कला

प्रागैतिहासिक काल से ही लोक कला की उत्पत्ति मानी जाती है जिसका मूल स्रोत प्राचीन कला सभ्यता व संस्कृति व धर्म है। मानव सभ्यता के साथ–साथ लोक कला व परम्परा का भी विकास हुआ तथा लोक कला ग्रामीण तथा शहरी दोनों क्षेत्रों में फैली हुई थी। आधुनिक काल में लोक कलायें और परम्परायें विभिन्न तीज–त्यौहारों, जन्मोत्सवों, विवाह, मरण आदि धार्मिक संस्कारों व अनुष्ठानिक पर्वों आदि पर मनोवांछित देवी–देवताओं को विभिन्न रूपों में लोक कलाओं के रूप में प्रस्तुत किये जाते है। प्रायः ये लोक कलायें व परम्परायें समाज के विकास के लिये अति लाभदायक व आवश्यक है। जैसी सांस्कृतिक विविधता हमारे देश में पायी जाती है वैसी ही विविधता उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र में निहित है। पूर्वी क्षेत्रों में मुख्य रूप से वाराणसी, मिर्जापुर, गोरखपुर, बस्ती, आजमगढ़ प्रमुख है जो अपने विशेष धार्मिक अनुष्ठानों, संस्कारों एवं त्यौहारों आदि के लिए प्रसिद्ध है। जहाँ लोक परम्पराओं के आधार पर लोक कलाओं को विशेष अवसरों पर आवश्यकतानुसार चित्रांकित किये जाते है साथ ही यह अपनी समृद्ध लोक सांस्कृतिक परम्पराओं, लोक कलाओं, लोक गीतों, लोक नृत्यों, हस्तशिल्पों और धार्मिक उत्सवों के लिए प्रसिद्ध है। यह क्षेत्र गंगा–घाघरा दोआब, सरयू , काशी और अवध क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत से जुड़ा हुआ है।

लोक कला व परम्परा का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है यह भारत के विभिन्न स्थलों पर भिन्न प्रकार की लोक कलायें (चित्र सं0 01) प्रचलित है। 'लोक कला' का अर्थ अधिक समझने के लिए सर्वप्रथम 'लोक' शब्द का भी अर्थ समझना आवश्यक है। 'लोक' को अंग्रेजी में 'फोक' (Folk) कहते है। लोक कला (फोक आर्ट), लोक संगीत (फोक म्यूजिक), लोक साहित्य (फोक लिटरेचर) आदि शब्दों से सम्बोधित किया जाता है। वर्तमान में 'फोकलोर' (Folklore) शब्द अत्यधिक प्रचलित है जिसका तात्पर्य 'लोकवार्ता' या 'लोककथा' से ही है। शास्त्रों के मतानुसार 'लोक' शब्द का अर्थ वेद से भिन्न अथवा संसार से है। लोक का अर्थ है ''देखना''। अवलोकन शब्द इसी आधार पर बना है। मानव इसी लोक में जन्म लेता है और इसी लोक में जीवन यापन करते हुये इसी लोक में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इसी लोक में मानव जीवन के कई अनुभवों का सामना करता है और उनसे सदैव कुछ न कुछ सीखता रहता है अतः यही 'लोक' है। सामान्य अर्थ में 'लोक' से तात्पर्य ''सामान्य जीवन'' से भी है अर्थात् 'लोक' का अर्थ 'संसार' भी है। 'लोक' में भूत, भविष्य और वर्तमान का सहचर्य होता है। समाज के सभी लोग लोक की किसी न किसी परम्परा से पूर्ण या आंशिक रूप से, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े होते हैं। लोक अनन्त है, असीम है, अतः जहाँ तक मानव की कल्पना पहुँच सकती है वहीं तक लोक की सीमा मानी जा सकती है। लोक कला की उत्पत्ति व्यवहारिक ज्ञान, सामान्य जन समुदाय की अनुभूति की अभिव्यक्ति है। जिसमें धार्मिक भावना, विश्वास, आस्था, अन्धविश्वास, भय निवारण एवं अलंकरण प्रवृत्ति आदि की रक्षा के विचार निहित होते है। मानव सभ्यता का विकास जैसे–जैसे होता गया लोक कलायें भी स्वतः विकसित होती गयी।

लोक कला को समझने के लिए इसी क्रम में सर्वप्रथम 'कला' को समझना आवश्यक है। 'कला' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में हुआ– ***''यथा कला यथा शफ, मघ शृण स नयामति।।''*** 'कला' शब्द का यथार्थवादी प्रयोग भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में प्रथम शताब्दी में किया– ***''न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।''*** अर्थात् ऐसा कोई ज्ञान नहीं, कोई शिल्प नहीं, कोई विद्या नहीं, जो कला न हो। 'कला' संस्कृत भाषा के 'कल्' धातु से व्युत्पत्ति मानी जाती है जिसका अर्थ है **'प्रेरित करना'**। कुछ विद्वान इसकी व्युत्पत्ति 'कं' धातु से मानते है– ***''कं सुखम् लाति इति कलम्'',''कं आनन्द लाति इति कला।''*** 'कला' का अर्थ एवं क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है इसके असंख्य रूप तथा भेद किये गये हैं। प्रायः 'कला' के विभिन्न अर्थ है– सुन्दर, मधुर, कोमल और सुख देने वाला तथा शिल्प, हुनर अथवा कौशल। 13वीं शताब्दी के प्रथम चरण में कला के लिए 'आर्ट' Art शब्द कर प्रयोग हुआ जिसका मूल धातु 'अर' है। 'आर्ट' शब्द लैटिन के 'आर्स' या 'आर्टेम' से उत्पन्न माना जाता है। इसका तात्पर्य–बनाना, उत्पन्न करना, पैदा करना या फिट करना है अर्थात् कला का अर्थ–शिल्प कौशल की प्रक्रिया से युक्त सृजन, सुन्दर एवं सुखद रूप होता है।

लोक कला केवल ग्राम व समुदाय की ही कला नहीं है बल्कि यह सभी की व्यवहृत (व्यवहार की) कला है जिसको व्यवहारिक रूप से सीखा जाता है और अपनी कला को आगे आने वाली पीढ़ियों को हस्तान्तिरित करती जाती है। लोक कला की बात करें तो सर्वप्रथम 'लोक परम्परा' और 'लोक संस्कृति' के गूढ़ रहस्यों को जानना आवश्यक होगा साथ ही इसके अन्तर को भी समझना होगा। हम जन्म से ही लोक परम्पराओं से जुड़े हुए है जिसका प्रभाव हमें लोक संस्कृति में देखने को मिलता है। जीवन के सुख–दुख के साथ परम्परायें बदलती रहती है ये अनश्वर है। लोक परम्परा और लोक संस्कृति से ही लोक कलाओं और लोक प्रतीकों का विकास हुआ है।

https://artorbit.in/
Art Orbit - Volume 02, No 03, March 2026,, PP 75-82 (Total PP 08)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/EXIT6166

'परम्परा' शब्द संस्कृत के 'परम्' (आगे/श्रेष्ठ) और 'परा' (प्रवाह/परिवर्तन) से मिलकर बना है। सामान्य अर्थ में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक निरन्तर रूप से चली आ रही मान्यतायें, रीति–रिवाज, कला, ज्ञान और जीवन पद्धति आदि से है। अंग्रेजी में Tradition कहते है यह लैटिन भाषा के Tradere से बना है जिसका अर्थ है ''सौपना या आगे बढाना''। अर्थात् जो सांस्कृतिक धरोहर समय के प्रवाह में सतत रूप से हस्तान्तिरित होती रही है, वही परम्परा है। परम्परा सामाजिक और सांस्कृतिक विरासत है। परम्परा केवल अतीत का अनुकरण नहीं है बल्कि सांस्कृतिक निरन्तरता का माध्यम व सामाजिक पहचान का आधार है। सामूहिक स्मृति और अनुभव का संचयन, मूल्य, नैतिकता, आस्था आदि का संवाहक है। यह स्थिर नहीं होता बल्कि समयानुसार परिवर्तित भी होती रहती है इसीलिए इसमें निरन्तरता और परिवर्तन दोनों ही विद्यमान रहती है। (चित्र सं0 02) भारतीय परम्परा में वेद, उपनिषद, पुराण, लोक कथायें, लोक गीत ये सभी मौखिक परम्परा से आगे बढ़ती है। परम्परा और संस्कृति का विशेष सम्बन्ध है संस्कृति व्यापक अवधारणा है जबकि परम्परा उसका गतिशील अंग है अर्थात् परम्परा, संस्कृति की जीवन रेखा है। परम्परा और आधुनिकता एक दूसरे के विरोधी नहीं है क्योकि परम्परा आधार प्रदान करती है और आधुनिकता उसमें नवाचार और परिवर्तन लाती है। यदि परम्परा में समयानुकूल परिवर्तन न हो, तो वह जड़ बन जाती है। वहीं यदि आधुनिकता परम्परा से पूर्णतः अलग हो जाये तो सांस्कृतिक पहचान कमजोर हो जाती है। यदि हम परम्परा को केवल अतीत का अवशेष मानेंगे तो वह समाप्त हो जायेगी लेकिन यदि उसे जीवित चेतना समझकर समयानुसार नवाचार करेंगे तो वह सदैव प्रासंगिक बनी रहेगी।

चित्र सं0 02
पारम्परिक लोक कला

पूर्वी उत्तर प्रदेश की प्रमुख जीवन्त लोक कलायें एवं परम्परायें– पूर्वी उत्तर प्रदेश की प्रमुख जीवन्त लोक कलाओं का मुख्य आधार हमारी लोक परम्परायें होती है और ये परम्परायें हमारे धर्म व संस्कार आदि से जुडा हुआ है। जो निम्नवत् है–

1. **धार्मिक अनुष्ठान व लोक पर्व के आधार पर लोक परम्परा–** पूर्वी उत्तर प्रदेश की प्रमुख जीवन्त लोक कला हमारे धर्म के आधार सृजित होती है। यहाँ पर सभी पर्व पूरे विधि–विधान के साथ मनाया जाता है जो हमारे सामुदायिक एकता, अखण्डता का प्रतीक है। जिनमें कुछ प्रमुख पारम्परिक पर्वों में **मकर संक्राति**, **बसंत पंचमी, नाग पंचमी, जिवित पुत्रिका या जिउतिया, गोवर्धन पूजा और छठ पूजा (सूर्य षष्ठी पूजा)** आदि तथा धार्मिक अनुष्ठान में विवाह के शुभ अवसर पर बनने वाला **कोहबर** का विशेष महत्व है जो क्षेत्र विशेष के आधार पर विधि–विधान से मनाये जाने के लिए प्रसिद्ध है।

मकर संक्राति पर्व को *''शास्त्रों के मतानुसार उत्तरायण की अवधि को 'देवताओं का दिन' अर्थात् 'सकरात्मकता का प्रतीक' तथा दक्षिणायन को 'देवताओं का रात्रि' अर्थात् 'नकरात्मकता का प्रतीक' कहा जाता है। इस तरह मकर–संक्राति एक प्रकार से देवताओं का प्रभात काल है तथा इस दिन गंगा में स्नान, दान, जप, श्राद्ध तथा अनुष्ठान आदि का अत्याधिक महत्व है। ऐसी मान्यता है कि इस दिन किये गये दान का कई गुना फल प्राप्त होता है।''*

''माघे मासे महादेवः यो दास्यति घृतकम्बलम।
स भुक्त्वा सकलान भोगान अन्ते मोक्षं प्राप्यति।।''

इस श्लोक का अर्थ है कि जो भी व्यक्ति मकर संक्रान्ति के दिन शुद्ध घी और कम्बल का दान करता है वह अपनी मृत्यु के पश्चात् जीवन–मरण के इस बंधन से मुक्त होकर मोक्ष की प्राप्ति करता है।

यह सूर्य के मकर राशि के प्रवेश के आधार पर 14 या 15 जनवरी को मनाया जाता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में यह पर्व विशेष महत्व रखता है। इस दिन पवित्र जल से स्नान करने से पहले तिल का उबटन लगाते है तत्पश्चात् ताँबे के पात्र से सूर्य को जल चढ़ाते हुए मंत्रोच्चारण करते है। शीत कालीन प्रकोप को कम करने के लिए मकर–संक्राति पर्व पर तिल का विशेष महत्व रहता है। इस दिन दही चिवड़ा, खिचड़ी व तिल के लड्डू खाने की प्रथा है और ब्राह्मणों और गरीबों को दान भी दिया जाता है। यह पारम्परिक रूप से चली आ रही प्रथा है।

वट सावित्री की पूजा व व्रत अखंड सौभाग्य और सन्तान की प्राप्ति के लिए किया जाता है। पाराशर मुनि के अनुसार ***'वट मूले तोपवासा'*** अर्थात् वट के मूल में तीनों देवताओं का वास है। मान्यता है कि वट वृक्ष के जड़ में भगवान ब्रह्मा, तने में भगवान विष्णु व डालियों और पत्तियों में भगवान शिव निवास करते है इसीलिए वट वृक्ष की पूजा की जाती है साथ में यम देवता की भी पूजा पूर्ण श्रद्धाभाव से किया जाता है। वट के नीचे बैठकर व्रत, कथा और पूजन करने से सम्पूर्ण मनोकामना पूर्ण होती है। दार्शनिक मतानुसार वट वृक्ष दीर्घायु और अमरत्व–बोध के प्रतीक स्वरूप माना जाता है साथ ही यह निर्वाण व ज्ञान का भी प्रतीक माना गया है।

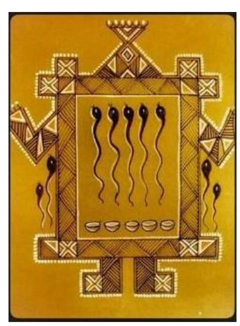
चित्र सं0 03 नाग पंचमी

नाग पंचमी पूजा पूर्वी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर, देवरिया व अन्य क्षेत्रों के घरों के चारों दीवारों पर गोबर से लीपकर धरीधार

https://artorbit.in/
Art Orbit - Volume 02, No 03, March 2026,, PP 75-82 (Total PP 08)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/EXIT6166

रेखायें बनायी जाती हैं तथा गोबर के उपले (कण्डे) और खड़ाऊ आदि बनाये जाते है। फिर आटे से नाग–नागिन बनाकर पंचमी के दिन पंचामृत खीर, दूध, लावा, कमल, धूप व नैवेध आदि से पूजा की जाती है। बनारस में एक प्रसिद्ध 'नाग कुआँ' है तथा एक 'नाग मुहल्ला' भी है। (चित्र सं0 03)

हरितालिका तीज में पूर्वी उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में इसे 'कजली तीज' के रूप में मनाते हैं। इस दिन 24 घण्टे निर्जला व्रत रखा जाता है। मान्यता है कि इस व्रत को करने से स्त्रियों को पार्वती के समान ही सुखपूर्वक पतिरमण करके शिवलोक को जाती है। सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपने सुहाग को अखण्ड बनाए रखने और अविवाहित कन्या मन योग्य वर पाने की कामना से हरितालिका तीज का व्रत करती है। इस व्रत को सर्वप्रथम पार्वती जी ने भगवान शिव के लिए रखा था। इस दिन व्रती मिट्टी के लक्ष्मी–गणेश की मूर्ति बनाती है तथा फल–फूल, माला, मिठाई, नवीन वस्त्र व श्रृंगार का सामान आदि पूजन सामग्री का प्रयोग करती हुये रात भर गीत–संगीत और कथा सुनाती है तथा इसी दौरान तीन बार आरती भी की जाती है।

जिवितिया व्रत (जिउतिया) या जिवित पुत्रिका व्रत पूर्वी उत्तर प्रदेश के प्रमुख पर्वों में से एक है। यह विक्रम संवत् के आश्विन माह के कृष्ण–पक्ष के अष्टमी तिथि अर्थात् सातवें से नौवें चंद्र दिवस तक तीन–दिवसीय त्यौहार है। विभिन्न स्थानों में इसे जिवित पुत्रिका, जीवित्पुत्रिका व्रत, जिउतिया, जितिया आदि नामों से भी जाना जाता है। इस पर्व में निर्जला (बिना पानी के) उपवास पूरे दिन का होता है तथा माँ अपने पुत्र की लम्बी आयु एवं सुख–समृद्धि के लिए यह व्रत करती है। जिवितिया के प्रथम दिन को 'नहाई–खाई' के नाम से जाना जाता है। मातायें स्नान करने के बाद ही भोजन ग्रहण करती हैं। दूसरे दिन 'जिवितपुत्रिका' एक कठिन निर्जला व्रत रखती है जिसे 'खुर जितिया' कहा जाता है। तीसरे दिन व्रत का समापन पारन के साथ होता है। जिवितिया के अवसर पर विभिन्न स्थानों पर भिन्न–भिन्न प्रकार के भोजन जैसे करी और सफेद चावल, नोनी का साग और मडुआ की रोटी व तोरी (तोरई) की सब्जी तैयार कर पारन (भोजन करना) किया जाता है। जीवितिया व्रत में व्रती स्त्री लाल, पीला या नारंगी धागे में जीवितिया को पीरों कर पहनती है। जीवतिया को सोने या चाँदी का नाव के आकार का बनाया जाता है तथा उसे धागों में पीरों कर पूजा स्थल पर पूजा करके व्रती को गले में पहनना होता है।

गोवर्धन पूजा पूर्वी उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में 'गोधना पूजा' के नाम से जाना जाता है। दीपावली के दूसरे दिन होने वाले इस पर्व को 'परेवा' या 'प्रतिपदा' कहा जाता है। इस दिन स्त्रियाँ व लड़कियाँ गाय के गोबर से घर के आँगन में गोबर की पतली–पतली बेलनाकृति से वर्गाकार गोधना बनाकर सजाती है। इसके बीच में गोवर्धन, सील–लोढ़ा, सूर्य–चन्द्र, तुलसी, साँप, जॉता–चक्की, सीढ़ी तथा रसोई के उपयोग की वस्तुओं को गोबर से बनाकर तथा किनारी को दोहरी रेखाओं से अलंकृत करते हुए एक द्वार का निर्माण करते है। गोबर से बीच आँगन में लेटे हुए गोधन को बना कर उसके नाभि पर मिट्टी का दीया जला कर रखते है और काँटे वाले पौधे की डाल, फूल, मिठाई, चना, लावा एवं सरसों आदि से पूजा आरम्भ करती है। यह पूजा सामूहिक पूजा होती है। इस दिन घर तथा समुदाय की सभी स्त्रियाँ व लड़कियाँ एक साथ मिलकर पूजा और व्रत करती है। इस पूजा में गोधना के चारों ओर बैठकर गोधना में निर्मित सभी आकृतियों के टीका लगाकर उसी स्थान पर कहानियाँ सुनती व सुनाती है। यह कहानियाँ भाई–बहन के प्यार को समर्पित रहती है। फिर गोबर से निर्मित गोधना को तथा उस पर रखे गये दिये (दीपक) को मूसर से कूटती है और गोधना को लांगती (कूदकर इधर–उधर पार करना) हुए लोक गीत भी गाती है। गोधना कूटने के बाद वहीं बैठ कर विभिन्न प्रकार के काँटे लेकर अपने–अपने भाईयों को श्राप देती है। (चित्र सं0 04)

चित्र सं0 04 गोवर्धन पूजा

षष्ठी पूजा (छठ पूजा) पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार से निकलकर समस्त भारत में ही नहीं, विश्व में भी प्रचलित है। कार्तिक मास की अमावस्या को दीपावली के छठवें दिन अर्थात् कार्तिक शुक्ल पक्ष षष्ठी को यह व्रत मनाये जाने के कारण इसे 'छठ व्रत' कहा जाता है। सूर्य षष्ठी पूजा को छठ पूजा, छठी मइया पूजा या डालाछठ भी कहा जाता है। सूर्य की शक्तियों का मुख्य स्रोत उनकी दोनों पत्नी ऊषा और प्रत्यूषा हैं। छठ पूजा में सूर्य देव के साथ–साथ दोनों शक्तियों की भी संयुक्त आराधना होती है। अतः संध्याकाल में सूर्य की अंतिम किरण (प्रत्यूषा) तथा प्रातः काल में सूर्य देव की पहली किरण (ऊषा) की पूजा करके अर्घ्य देकर नमन किया जाता है। सूर्य देव और छठी मइया भाई–बहन है। (चित्र सं0 05)

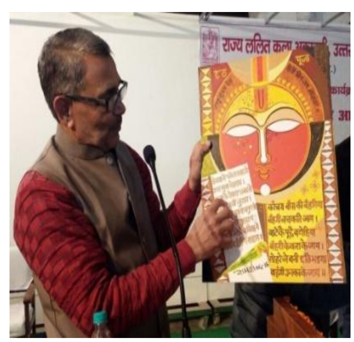
चित्र सं0 05 कलाकार रामशब्द द्वारा चित्रित छठ पूजा

इस पर्व का अनुष्ठान अत्यन्त कठिन है तथा चार दिवस का व्रत करने का भी प्रावधान है। छठ पूजा में पवित्र स्नान, उपासना, निर्जला व्रत, सूर्यास्त से पहले एवं सूर्योदय से पहले से पवित्र नदी गंगा या अन्य कोई नदी, तालाब, पोखर व जलाशयों आदि में लम्बे समय तक पानी में खड़े होकर श्रद्धापूर्वक हाथ में सूप लेकर सूर्य देव की प्रार्थना करके अर्घ्य (गंगा जल या गाय का दूध) देने की प्रथा मुख्य रूप से शामिल है। इस पर्व में श्रद्धापूर्वक और स्वच्छतापूर्वक प्रसाद बनाया एवं बाँटा जाता है। छठ पर्व को पारिवारिक

https://artorbit.in/
Art Orbit - Volume 02, No 03, March 2026,, PP 75-82 (Total PP 08)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/EXIT6166

सुख–समृद्धि तथा मनोवांछित फल प्राप्ति के लिए मनाया जाता है तथा स्त्री–पुरूष समान रूप से इस पर्व को मनाते है। पहला दिन कार्तिक शुक्ल चतुर्थी 'नहाय खाय' के रूप में पहले सेन्धा नमक (व्रत में खाया जाने वाला नमक), घी से बना हुआ अरवा चावल और कद्दू की सब्जी प्रसाद के रूप में चढ़ाया एवं खाया जाता है। 'खरना' मतलब व्रत के शुरूआत का पहला दिन। दूसरे दिन कार्तिक शुक्ल पंचमी को व्रत आरम्भ होता है। दिनभर अन्न–जल त्याग कर व्रती संध्या में स्नान कर गुड़ की खीर और रोटी का प्रसाद ग्रहण करती हैं उसे 'खरना' कहा जाता है। तीसरे दिन कार्तिक शुक्ल षष्ठी को अस्ताचलगामी सूर्य अर्घ्य को 'सूर्य षष्ठी व्रत व पूजा' कहा जाता है इस दिन व्रती घर पर 'ठेकुआ' प्रसाद के रूप में बनाती है तथा संध्या पूजा के लिए बाँस की टोकरी और अर्घ्य के सूप को सजाया जाता है। व्रती के साथ परिवार एवं पड़ोस के लोग भी घाट पर जाते है। तीसरे दिन का व्रत महत्वपूर्ण एवं मान्यता वाला माना जाता है अर्थात् पूर्वांचल क्षेत्र में इस दिन का विशेष महत्व है। इस दिन 24 घण्टे का निर्जला व्रत रखा जाता है तथा दिन भर व्रत रखते हुए संध्या को घाट (नदी, तालाब व पोखर आदि) पर जाकर अस्तचलगामी (डूबते) सूर्य को अर्घ्य (दूध या गंगाजल) देती है।

चौथे दिन कार्तिक शुक्ल सप्तमी की सुबह उदियमान (उगते) सूर्य को अर्घ्य देने को ही 'उषा अर्घ्य' कहते है। संध्या के समान प्रातः काल में भी पूजा की जाती है तथा सुहागिन औरतें एक दूसरे को पीला सिंदूर लगाते हुए प्रसाद का वितरण करती है तत्पश्चात् व्रती कच्चे दूध का शरबत पीकर एवं प्रसाद खाकर व्रत का पारण करती है। यह पर्व पारिवारिक, सामाजिक आस्थाओं एवं सहयोग द्वारा सम्पन्न होता है। छठ व्रत शुरू करने के पश्चात् सालों साल तक इस व्रत एवं पूजा को पूर्ण विधि–विधान के साथ किया जाता है जब तक अगली पीढ़ी की किसी विवाहित महिला को हस्तान्तिरित कर दिया जाये।

छठ पूजा में पूजा की तैयारी व विधि–विधान करते समया लोक गीत गाये जाते है जैसे–

काँच ही बाँस के बहँगिया, बहँगी लचकति जाए ....बहँगी लचकति जाए.......
बात जे पुछेले बटोहिया बहँगी केकरा के जाए? बहँगी केकरा के जाए?
तू त आन्हर हउवे रे बटोहिया, बहँगी छठी माई के जाए.......
काँच ही बाँस के बहँगिया, बहँगी लचकति जाए ....बहँगी लचकति जाए........

वर्ष के बारह महीने में होने वाले सभी पर्वों में प्रमुख प्रचलित लोक पर्वो का उनका पारम्परिक रूप से लोक महत्व निहित है। क्षेत्र विशेष के आधार पर विभिन्न अवसरों पर विभिन्न चित्रण धरातल पर लोक कलाओं व परम्पराओं को विभिन्न माध्यमों से सुसज्जित किया जाता है जिसमें प्रमुख रुप से भित्ति चित्रण में **कोहबर**, भूमि चित्रण में **अल्पना, चौक, रंगोली, गोवर्धन पूजा**, पट चित्रण में विवाह के अवसर पर बैठने वाले **चौकी** (पीढ़ा) (चित्र सं0 06) पर अलंकरण तथा अन्य चित्रण पटल जैसे कपड़ा, कागज एवं जूट आदि पर अपनी लोक मान्यताओं के आधार पर लोक अलंकरणों का प्रयोग किया जाता है।

चित्र सं0 06 चौकी (पीढ़ा)

कोहबर चित्रण पूर्वी उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत भित्ति चित्रण में मुख्य है। इसी प्रकार भित्ति चित्रण में कोहबर चित्रण को यहाँ 'कोहबर लेखन' कहा जाता है। ये आकृतियाँ इतनी स्पष्ट और सरल होती है कि उनको आसानी से पढ़ा व समझा जा सकता है। विवाह के समय कोहबर बनाने की प्रथा प्रचलित है परन्तु जिस विधि–विधान और मनोयोग के साथ अंकन होता है अन्यत्र प्रतीत नहीं होता। कोहबर तीन भागों में चित्रित होता है, तीनों स्थानों पर अलग–अलग प्रकार के चित्रांकन का विधान है। इसका उद्देश्य नव दाम्पत्ति के भावी जीवन की मंगल कामना के साथ वंशवृद्धि की कामना होती है। भित्ति चित्रण कोहबर आयताकार या चतुर्भुजीय आकार का होता है। इनमें मुख्यतः तोता, बाँस, कमल का पत्ता, कछुआ, मछली, मैना एवं योगिन आदि का अंकन प्रचलन में है। कोहबर चित्रण में तांत्रिक आकृतियों का भी सांमजस्य व समावेश होता है। कोहबर चित्रण निपुण महिलाओं द्वारा विवाह जैसे मांगलिक अवसरों पर विशेषकर बनाया जाता है। (चित्र सं0 07) जल रंगों या महावर से रूई की तूलिका या अनार की कलम से कोहबर के ये चित्र बनाये जाते है। साथ ही अनेक प्रकार के चित्र दीवार पर बनाने की परम्परा प्रचलित है। जैसे काशी के लगभग सभी घरों की दीवारों पर लोक चित्रण होता है जिन्हें आज भी देखा जा सकता है।

चित्र सं0 07 कोहबर

इनके आधार पर ही वहाँ की प्रमुख लोक नृत्य जैसे– **नौटंकी** और **रामलीला** प्रसिद्ध है। जिसमें वाराणसी के रामनगर की रामलीला की अपनी लोक परम्परा के आधार पर अलग ही पहचान है। लोक गीत/संगीत व कथाओं में प्रमुख रूप से **कजरी, बिरहा, चैती, सोहर, भजन व कीर्तन** आदि प्रमुख है। जो सामाजिक एकता और सांस्कृतिक निरन्तरता को प्रस्तुत करती है। यह परम्परायें गाँव के बड़े–बुजुर्ग लोगों की वजह से जीवित है नहीं तो आगे आने वाली पीढ़ी में यह मौखिक रूप से जीवन्त रख पाना मुश्किल है।

https://artorbit.in/
Art Orbit - Volume 02, No 03, March 2026,, PP 75-82 (Total PP 08)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/EXIT6166

चित्र सं0 08 लकड़ी के खिलौने

लोक हस्त शिल्प कला परम्परा– वाराणसी के खुजवां क्षेत्र के **लकड़ी के खिलौनों** (चित्र सं0 08) व रामनगर के **मिट्टी के खिलौनों** (चित्र सं0 09), **बनारसी साड़ियों** जिन्हें कारीगर हाथों द्वारा सुनहरी एवं रजत ज़री का प्रयोग करके पुष्प एवं बेल–बूटेदार कलात्मक अलंकरणों द्वारा निर्माण कर मुख्यतः मांगलिक कार्यों और विवाह आदि अवसरों पर विशेष रूप से उपयोग किया जाता है, **पीतल के बर्तनों**, काँच की वस्तुओं आदि के लिए प्रसिद्ध हैं वहीं मिर्जापुर की लोक कलाओं में कठपुतली नृत्य प्रमुख है तथा भदोही के **कालीन उद्योग** भी विश्व प्रसिद्ध है। यहाँ के बुनकरों द्वारा निर्मित कालीन राष्ट्रीय स्तर पर नहीं, बल्कि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर निर्यात किये जाते है। इन कालीनों को ऊनी व रेशमी धागों का उपयोग, पारम्परिक अंलकरणों का प्रयोग तथा व्यापार उपयोगी उत्पादनों के निर्माण किया जाता है। गोरखपुर, औरंगाबाद का **टेराकोटा कार्य** राष्ट्र में ही नहीं बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी अलग पहचान बनाये हुए हैं। यहाँ पर विभिन्न पशु–पक्षी, विभिन्न लोक आकृतियाँ आदि को चॉक द्वारा मिट्टी से बनाकर आग में पकाया जाता है जिससे पकने के बाद उसमें लाल रंग स्वतः ही आ जाता है यह भी धार्मिक, सजावटी व उपयोगी वस्तुयें होती है साथ ही यहाँ का हथकरघा उद्योग भी काफी प्रसिद्ध है। संत कबीर नगर के खलीलाबाद का भी वस्त्र तथा बर्तनों का उद्योग प्रसिद्ध है। आजमगढ़ के निजामाबाद की **ब्लैक पॉटरी** प्रसिद्ध है। इन सभी क्षेत्रों की अपनी पारंपरिक व सांस्कृतिक पहचान है और इनका अपना विशेष महत्त्व है जिन्हें लोक कलाओं में समावेशित किया गया है। लोक कलाओं को क्षेत्र विशेष के आधार पर वर्तमान में सजावटी वस्तुओं तथा व्यवसायों के रूप में लोगों द्वारा अपनाया गया हैं। वर्तमान में इन क्षेत्रों में कुछ ही लोक कलायें ही शेष रह गयी हैं। इसलिए इस क्षेत्र के लोगों ने केवल उन्हीं लोक कलाओं को जीवित रखा है जिसका उन लोगों ने व्यवसायीकरण कर, आर्थिक रूप से लाभान्वित हो रहे हैं।

चित्र सं0 09 मिट्टी के खिलौने

संरक्षण, संवर्धन एवं नवाचार–

लोक कला, परंपरा व संस्कृति को सुरक्षित और संरक्षित रखने हेतु लोगों तथा सरकारों को उचित प्रयास करने की आवश्यकता है। उसके लिए सरकार तथा गैर सरकारी संस्थाओं के विभिन्न योजनाओं के माध्यम से निरन्तर नए–नए कार्यक्रमों (प्रोग्राम), कार्यशालाओं का आयोजन करने के साथ कला विषयों की महत्ता एवं उसकी उपयोगिता को लोगों को बताना होगा। जिससे कला का प्रचार–प्रसार अत्यधिक हो सके। राज्य ललित कला अकादमी व ललित कला अकादमी (क्षेत्रीय) द्वारा भी समस्त लोक कलाओं के संरक्षण हेतु महत्वपूर्ण एवं जरूरी कदम उठाने होगें तथा लोक कलाओं व कलाकृतियों को संरक्षित कर सामान्य लोगों के लिए संग्रह कर व उसकी प्रदर्शनियों का आयोजन करना चाहिए। विभिन्न क्षेत्र के कलाकारों को बुलाकर कार्यशालायें एवं संगोष्ठियों का आयोजन आदि कार्यक्रमों को शामिल करना चाहिए जिससे ग्रामीण व जनजातीय लोक कलाओं का संरक्षण व प्रलेखन भी हो सके। साथ ही शैक्षणिक दृष्टि से विद्यालय व विश्वविद्यालय स्तर पर नयी शिक्षा नीति के आधार पर कला, लोक कला, परम्परा व संस्कृति को पाठ्यक्रम में शामिल करने की आवश्यकता है।

(चित्र सं0 10) गोदना (पारम्परिक) परिवर्तित स्वरूप टैटू

आधुनिकतावश इन लोक कलाओं की मौलिकता धीरे–धीरे अवश्य नष्ट हो रही है परंतु वर्तमान समय में इन कलाओं एवं परम्पराओं को परम्परागत रूप में न अपना कर नये कलेवर के साथ अपनाया जा रहा है। लोक कलाओं और परम्पराओं के आधुनिकीकरण से ग्रामीण कलाकारों को नए अवसरों के रूप में रोजगार के भी नये रास्ते खुल जाते हैं। चूँकि वर्तमान में लोगों को पारंपरिक वस्त्र (परिधान), आभूषण आदि अत्याधिक आकर्षित करते हैं इसलिए आधुनिक परिवेश में लोक कलाओं को जीवित रखते हुए इनको अपनाए हुए हैं। घरों को सजाने के लिए हस्त निर्मित वस्तुयें (मिट्टी, लकड़ी, कपड़ा व बाँस आदि की वस्तुयें) साथ ही ग्रामीण अंचल की पारंपरिक प्रथा–गोदना का परिवर्तित स्वरूप टैटू (चित्र सं0 10) ने ले लिया है जिन्हें आज लोग फैशन के रूप में अपने शरीर पर बनवाते हैं। वर्तमान में स्त्रियों को आभूषण के रूप में आदिवासी आभूषण (ऑक्साइड आभूषण) ज्यादा पसन्द आने लगे है साथ ही विभिन्न प्रकार के पत्थरों व मोतियों से निर्मित आभूषणों की माँग भी बाजार में काफी बढ़ गई है। टेराकोटा की वस्तुओं का भी अत्यधिक प्रयोग सजावटी वस्तुओं के रूप में एवं उपहार स्वरूप देने हेतु होने लगा है। (चित्र सं0 11) अतः लोक कला पर आधुनिकता का प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों प्रभाव पड़ा जिससे सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही पक्ष सामने आते है। अतः हम कह सकते हैं कि आधुनिकता ने दोनों दृष्टिकोणों को प्रभावित किया है। शिक्षा का प्रभाव जैसे–जैसे बढ़ने लगा वैसे–वैसे लोक कथायें, लोक गीत, लोक नृत्य व लोक चित्रकला भी उसी अनुपात में लुप्त हो रही हैं। विभिन्न उत्सव व पर्व पर बनने वाले चौक पूरना, आलेखन आधुनिकतावश स्टीकरों ने स्थान ले लिया।

Art Orbit - Volume 02, No 03, March 2026,, PP 75-82 (Total PP 08)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/EXIT6166

अतः भविष्य की दृष्टि से लोक कलाओं एवं प्रतीकों को संरक्षित रखते हुए उनके आस्था, श्रद्धा, विश्वास को बनाए रखना आवश्यक है तभी लोक संस्कृति और परंपरायें भी वास्तविक स्वरूप में जीवित रहेंगे। इसके लिए सरकारों तथा लोगों को सजग होने की आवश्यकता है। लोक कला को जन्म देने वाली ग्रामीण लोगों की कला को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है जैसे– गोदनाकार, शिल्पकार (जो पुश्तैनी कार्य करते हैं)। इसी प्रकार लोक नृत्य, लोक गीत/संगीत व परम्परा को फ्यूजन रूप में डिजिटल दस्तावेजीकण भी करना आवश्यक है।

चित्र सं0 11 टेराकोटा की वस्तुयें

भारत सरकार द्वारा लोक कलाओं को सुरक्षित व संरक्षित करने हेतु कई योजनाओं का निर्माण किया गया है जिसमें प्रमुख रूप से **'कौशल विकास योजना'** है जो क्षेत्र विशेष की लोक कलाओं को बढ़ावा देने के लिए लोगों को प्रशिक्षित कर रोजगार के अवसर प्रदान करती है जिससे लोग अपना व्यवसाय भी कर सकते है। लोक कलाओं के विकास के लिए सरकार द्वारा आर्थिक सहायता भी प्रदान की गयी है। वर्तमान में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा **'एक जिला एक उत्पाद'** कुछ प्रसिद्ध लोक कलाओं को **'जी0 आई0 टैग'** भी दिया गया है जिससे उत्पादों को देश में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी सरलता से आयात–निर्यात किया जा सके। विकास के क्रम में पूर्वांचल एक्सप्रैस वे एवं अन्तरराष्ट्रीय हवाई अड्डे का निर्माण किया गया है जिससे पूर्वी लोक कला व संस्कृति का सरलता से प्रचार–प्रसार हो सकेगा तथा विदेशी आवागमन से लोक कलाओं को विदेशों में भी पहचान एवं समृद्धतता मिलेगी।

निष्कर्ष–

शहरीकरण, बाजारीकरण एवं व्यवसायीकरण के कारण लोक कला के स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ है एवं शहरी माँग के आधार पर लोक कलाकृतियों के आकार व स्वरूप में नवीनता के साथ परिवर्तन देखने को मिलता है। जिससे पारंपरिक लोक भावनायें भी धीरे–धीरे परिवर्तित हो रही है या समाप्त हो रही है। लोग लोक कलाओं को अपनाना तो चाहते है लेकिन आधुनिकता के साथ अर्थात् आधुनिकता की छाप उन पर ज्यादा ही दिखायी देती है। समयाभाव, बाजारीकरण और शहरीकरण से केवल शहरों में ही नहीं बल्कि गाँवों में भी लोक कलाओं, रीति–रिवाज और लोक संस्कृति को प्रभावित कर रही है। लोक कला को जीवित रखने व पीढ़ियों को हस्तांतरित करने का श्रेय नारी को जाता है।

वर्तमान समय में सरकारी प्रयासों से लोक कलायें हमारे देश में ही नहीं विदेशों में भी लोकप्रिय हो रही है। कलाओं के क्षेत्र में जो महान क्रांति हुई है उसने इस बात को भी स्पष्ट कर दिया है कि कला के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझने वाले व्यक्ति कला के भविष्य के संबंध में भी विचार अवश्य करना चाहिए। वहीं आधुनिक समय में एक तरफ लोक कलाकारों का ह्रास भी हो रहा है और लोगों द्वारा उनके प्रति उदासीनता भी देखने को मिलती है। बदलते परिवेश में वास्तविक लोक कलाकारों के काम पर संकट आ गया है क्योंकि उनके कार्य करने का क्षेत्र सीमित होता जा रहा है जिससे उन्हें आर्थिक मंदी का सामना करना पड़ रहा है। लोक कला और परम्परा की उन्नति व विकास के लिए किसी प्रकार का प्रश्न, प्रलोभन या प्रोत्साहन की आवश्यकता नहीं होती। यह स्वतंत्र रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी को अग्रसारित होता है तथा लोक कला एवं परम्परा की मौलिकता के साथ सदैव प्रगति करती रहती है।

सन्दर्भ–

1. अग्रवाल, आर0 ए0, (2006). *भारतीय चित्रकला का विवेचन, कला विलास*. मेरठ, लायल बुक डिपो.
2. उपाध्याय, कृष्ण देव, (2009). *लोक संस्कृति की रूपरेखा*. इलाहाबाद, लोक भारती प्रकाशन.
3. गंगराड़े, प्रकाशचंद्र, (2015).*हिन्दूओं के व्रत, पर्व और तीज–त्यौहार*. नई दिल्ली, वी एण्ड एस पब्लिशर्स, दरियागंज.
4. चतुर्वेदी, मंजुला, (2009). *भारतीय लोककला के अभिप्राय*. वाराणसी, कला प्रकाशन.
5. भार्गव, गोपाल, (2011). *उत्तर प्रदेश की कला एवं संस्कृति*. कल्पाज पब्लिकेशन.
6. विश्वकर्मा, श्रीमती प्रीति, (2009). *पूर्वांचल की लोक चित्रकला*. वाराणसी, कला प्रकाशन.
7. शास्त्री, गिरीश. *भारतीय लोककला के बदलते आयाम (चुनौतियाँ एवं सम्भावनायें)*. नेशनल प्रेस.
8. सिंह, मनोज कुमार, (2018). *पूर्वी उत्तर प्रदेश की लोककला में सांस्कृतिक तत्व*. आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस

https://artorbit.in/
Art Orbit - Volume 02, No 04, April 2026, PP 83-86 (Total PP 04)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/ZKXG4636

NALINI MALANI'S CONTRIBUTION TO CONTEMPORARY INDIAN ART (भारतीय समकालीन कला में नलिनी मलानी का योगदान)

Meraj Ahemad[a]⁎ Prof. Vinita Yadav[b]

[a] *Research Scholar, Department of Drawing and Painting, Dau dayal Mahila P.G. College, Firozabad, Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra.*

[b] *Professor and Head, Department of Drawing and Painting, Dau dayal Mahila P.G. College, Firozabad, Dr. Bhimrao Ambedkar University, Agra.*

[a]*Email: ma616831@gmail.com*

Abstract

भारतीय समकालीन कला के विकास में नलिनी मलानी का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण और बहुआयामी है। उन्होंने चित्रकला, वीडियो कला, इंस्टॉलेशन, शैडो प्ले, डिजिटल एनीमेशन तथा मिश्रित माध्यमों के द्वारा भारतीय कला को वैश्विक स्तर पर नई पहचान प्रदान की। विभाजन की त्रासदी, स्त्री-अस्मिता, हिंसा, विस्थापन, सामाजिक अन्याय, सांप्रदायिकता तथा सत्ता-संरचनाओं की आलोचना उनके कला-संसार के प्रमुख विषय हैं। नलिनी मलानी ने भारतीय पौराणिक आख्यानों, लोकस्मृतियों तथा विश्व साहित्य के पात्रों को समकालीन संदर्भों से जोड़ते हुए एक नवीन दृश्य-भाषा का निर्माण किया है। उनकी कला केवल सौंदर्यबोध तक सीमित नहीं रहती, बल्कि सामाजिक चेतना, मानवीय संवेदना और लोकतांत्रिक मूल्यों को भी अभिव्यक्त करती है। उन्होंने भारतीय समकालीन कला में वीडियो इंस्टॉलेशन तथा बहुमाध्यमीय अभिव्यक्ति को लोकप्रिय बनाने में अग्रणी भूमिका निभाई। अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनियों एवं संग्रहालयों में उनकी सक्रिय उपस्थिति ने भारतीय कला को वैश्विक विमर्श से जोड़ा। इस शोध आलेख में नलिनी मलानी के जीवन, कला-दृष्टि, प्रमुख कृतियों तथा भारतीय समकालीन कला में उनके योगदान का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नलिनी मलानी ने भारतीय कला को सामाजिक सरोकार, नारीवादी दृष्टिकोण और नवीन कलाभाषा प्रदान कर समकालीन कला के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

Nalini Malani's contribution to the development of contemporary Indian art is highly significant and multidimensional. She has given Indian art a new identity on the global stage through painting, video art, installations, shadow play, digital animation, and mixed media. The tragedy of partition, female identity, violence, displacement, social injustice, communalism, and critiques of power structures are key themes in her art. Nalini Malani has created a new visual language by connecting Indian mythological stories, folk memories, and characters from world literature to contemporary contexts. Her art is not limited to aesthetics alone but also expresses social consciousness, human sensitivity, and democratic values. She played a pioneering role in popularizing video installations and multimedia expression in contemporary Indian art. Her active presence in international exhibitions and museums has connected Indian art with global discourse. This research article presents an analytical study of Nalini Malani's life, artistic vision, major works, and her contributions to contemporary Indian art. The study makes it clear that Nalini Malani has made a significant contribution to the development of contemporary art by bringing social concerns, a feminist perspective, and a new artistic language to Indian art.

Keywords: नलिनी मलानी, समकालीन भारतीय कला, नारीवाद, वीडियो इंस्टॉलेशन, सामाजिक सरोकार।

Nalini Malani, contemporary Indian art, feminism, video installation, social concerns.

⁎ Corresponding author.

भूमिका

भारतीय समकालीन कला ने बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर इक्कीसवीं शताब्दी तक अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन देखे हैं। वैश्वीकरण, तकनीकी विकास, सामाजिक परिवर्तन, स्त्री चेतना तथा सांस्कृतिक बहुलता ने भारतीय कलाकारों की अभिव्यक्ति को नई दिशा प्रदान की। समकालीन कलाकारों ने पारंपरिक माध्यमों से आगे बढ़कर वीडियो कला, इंस्टॉलेशन, डिजिटल मीडिया, परफॉर्मेंस तथा मिश्रित माध्यमों को अपनाया, जिससे कला केवल दृश्य सौंदर्य का माध्यम न रहकर सामाजिक विमर्श का सशक्त उपकरण बन गई।

इस परिवर्तनशील परिदृश्य में नलिनी मलानी का नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। वे उन भारतीय कलाकारों में हैं जिन्होंने कला को समाज, राजनीति, इतिहास और स्त्री-अनुभवों से जोड़कर उसकी अभिव्यक्ति को व्यापक बनाया। उनकी कला मानवीय संवेदनाओं, सामाजिक अन्याय, युद्ध,

https://artorbit.in/
Art Orbit - Volume 02, No 04, April 2026,, PP 83-86 (Total PP 04)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/ZKXG4636

विस्थापन, सांप्रदायिक हिंसा तथा स्त्री-अस्मिता जैसे विषयों को केंद्र में रखती है। उन्होंने चित्रकला, वीडियो इंस्टॉलेशन, डिजिटल एनीमेशन, शैडो इंस्टॉलेशन तथा मिश्रित माध्यमों के माध्यम से भारतीय समकालीन कला को नई दिशा प्रदान की।

नलिनी मलानी की कला केवल दृश्य अनुभव नहीं, बल्कि विचार और संवेदना का ऐसा संसार है जो दर्शक को सामाजिक यथार्थ पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित करता है। उनकी कृतियाँ भारतीय पौराणिक कथाओं, इतिहास, साहित्य और समकालीन राजनीतिक घटनाओं को एक साथ जोड़ते हुए बहुस्तरीय अर्थों का निर्माण करती हैं। इसी कारण वे भारतीय समकालीन कला की सबसे प्रभावशाली कलाकारों में गिनी जाती हैं।

भारतीय समकालीन कला का स्वरूप

समकालीन कला से आशय उस कला से है जो वर्तमान समय की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों को अभिव्यक्त करती है। भारतीय समकालीन कला का विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तीव्र गति से हुआ। आरंभिक वर्षों में कलाकारों ने आधुनिकतावादी प्रवृत्तियों को अपनाया, परंतु बाद में उन्होंने स्थानीय संस्कृति, सामाजिक संघर्ष, लैंगिक असमानता, पर्यावरणीय संकट तथा वैश्विक राजनीति जैसे विषयों को अपनी कला का आधार बनाया।

समकालीन कला में माध्यमों की विविधता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कैनवास पर चित्रांकन के साथ-साथ इंस्टॉलेशन, वीडियो, डिजिटल मीडिया, फोटोग्राफी तथा परफॉर्मेंस आर्ट का व्यापक प्रयोग हुआ। इस परिवर्तन ने कलाकारों को जटिल सामाजिक प्रश्नों को अधिक प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने का अवसर दिया। नलिनी मलानी इसी बहुमाध्यमीय परंपरा की अग्रणी कलाकार हैं।

नलिनी मलानी : जीवन एवं कलायात्रा

नलिनी मलानी का जन्म 1946 में कराची (वर्तमान पाकिस्तान) में हुआ। भारत विभाजन के समय उनका परिवार विस्थापित होकर भारत आया। विभाजन की त्रासदी, विस्थापन की पीड़ा और सामाजिक असुरक्षा का अनुभव उनके व्यक्तित्व तथा कला-दृष्टि पर गहरा प्रभाव छोड़ गया। यही कारण है कि उनकी अधिकांश कलाकृतियों में हिंसा, स्मृति, युद्ध और विस्थापन की अनुभूतियाँ प्रमुख रूप से दिखाई देती हैं।

उन्होंने मुंबई के सर जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट से कला शिक्षा प्राप्त की। प्रारंभिक दौर में वे चित्रकार के रूप में प्रसिद्ध हुईं, किंतु शीघ्र ही उन्होंने वीडियो कला, इंस्टॉलेशन तथा मल्टीमीडिया अभिव्यक्ति को अपनाया। उन्होंने भारत के अतिरिक्त यूरोप, अमेरिका और एशिया के अनेक देशों में प्रदर्शनियाँ आयोजित कीं तथा अंतरराष्ट्रीय कला जगत में भारतीय समकालीन कला का प्रतिनिधित्व किया।

नलिनी मलानी की कला पर भारतीय मिथकों, यूनानी मिथकों, शेक्सपीयर, महाभारत तथा आधुनिक साहित्य का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। वे इन स्रोतों का प्रयोग वर्तमान सामाजिक समस्याओं की व्याख्या करने के लिए करती हैं। इस प्रकार उनकी कला इतिहास और वर्तमान के बीच संवाद स्थापित करती है।

नलिनी मलानी की कला-दृष्टि

नलिनी मलानी की कला का मूल उद्देश्य समाज में व्याप्त अन्याय, हिंसा और असमानता के प्रति संवेदनशीलता उत्पन्न करना है। वे कला को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम मानती हैं। उनकी कला में स्त्री केवल सौंदर्य का विषय नहीं, बल्कि संघर्ष, प्रतिरोध और आत्मसम्मान का प्रतीक बनकर सामने आती है।

उन्होंने भारतीय पौराणिक पात्रों—विशेषकर सीता, द्रौपदी और अन्य स्त्री चरित्रों—को आधुनिक संदर्भों में पुनर्परिभाषित किया है। इन पात्रों के माध्यम से वे आज की महिलाओं पर होने वाले अत्याचार, भेदभाव और सामाजिक दमन को अभिव्यक्त करती हैं। उनकी दृष्टि में इतिहास और मिथक केवल अतीत की घटनाएँ नहीं हैं, बल्कि वर्तमान समाज को समझने के महत्वपूर्ण माध्यम हैं।

उनकी कला में रंग, प्रकाश, ध्वनि और गति का समन्वय दर्शकों को सक्रिय अनुभव प्रदान करता है। वीडियो इंस्टॉलेशन तथा शैडो प्ले के माध्यम से वे ऐसा वातावरण निर्मित करती हैं जिसमें दर्शक स्वयं कला का एक भाग बन जाता है। इस प्रकार उनकी कला दर्शक और कलाकृति के बीच प्रत्यक्ष संवाद स्थापित करती है।

नलिनी मलानी का नारीवादी दृष्टिकोण केवल महिलाओं की समस्याओं तक सीमित नहीं है, बल्कि वह मानवाधिकार, लोकतंत्र, शांति तथा सामाजिक न्याय जैसे व्यापक मानवीय मूल्यों का समर्थन करता है। उनकी कला विश्वभर में उत्पीड़ित समुदायों की आवाज़ को अभिव्यक्ति देती है और सत्ता की दमनकारी प्रवृत्तियों का विरोध करती है।

उनकी रचनात्मकता का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि वे परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन स्थापित करती हैं। भारतीय सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रयोग करते हुए भी उनकी कला पूरी तरह समकालीन दिखाई देती है। यही विशेषता उन्हें भारतीय समकालीन कला की अग्रणी कलाकारों की श्रेणी में स्थापित करती है।

नलिनी मलानी की प्रमुख कलाकृतियाँ एवं उनका विश्लेषण

नलिनी मलानी की कलाकृतियाँ विषय-वस्तु, तकनीक और अभिव्यक्ति की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध हैं। उन्होंने चित्रकला, वीडियो, डिजिटल एनीमेशन, इंस्टॉलेशन तथा शैडो-थिएटर जैसे माध्यमों का प्रयोग करते हुए ऐसी दृश्य-भाषा विकसित की, जिसमें दर्शक केवल कलाकृति को देखता ही नहीं, बल्कि उसका सहभागी भी बन जाता है। उनकी अनेक कृतियाँ अंतरराष्ट्रीय संग्रहालयों और कला दीर्घाओं में प्रदर्शित हो चुकी हैं।

1. ***Remembering Mad Meg***

यह नलिनी मलानी की सर्वाधिक चर्चित वीडियो-शैडो इंस्टॉलेशन कृतियों में से एक है। इसका प्रेरणा-स्रोत फ्लेमिश चित्रकार पीटर ब्रूगल की प्रसिद्ध पेंटिंग *Dulle Griet (Mad Meg)* है। मलानी ने इस पात्र को आधुनिक स्त्री के संघर्ष और प्रतिरोध के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है। घूमते हुए पारदर्शी बेलनों, प्रकाश और छायाओं के माध्यम से निर्मित यह कृति युद्ध, हिंसा, स्त्री-दमन तथा सामाजिक असमानता के विरुद्ध सशक्त वक्तव्य प्रस्तुत करती है।

2. ***Mother India: Transactions in the Construction of Pain***

Art Orbit - Volume 02, No 04, April 2026,, PP 83-86 (Total PP 04)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/ZKXG4636

इस कृति में कलाकार ने भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति, विभाजन की त्रासदी तथा राजनीतिक हिंसा को अत्यंत संवेदनशील ढंग से चित्रित किया है। यह कृति राष्ट्रवाद, मातृत्व और स्त्री-अस्मिता के बीच संबंधों की आलोचनात्मक व्याख्या करती है तथा दर्शक को सामाजिक संरचनाओं पर पुनर्विचार के लिए प्रेरित करती है।

3. ***In Search of Vanished Blood***

यह बहुचर्चित वीडियो इंस्टॉलेशन विलियम शेक्सपीयर के *Macbeth* और *Cassandra* जैसे साहित्यिक पात्रों से प्रेरित है। इसमें युद्ध, सांप्रदायिक हिंसा, सत्ता और मानवीय त्रासदी को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। प्रकाश, ध्वनि और गतिशील छवियों के माध्यम से कलाकार यह संदेश देती हैं कि इतिहास में हुई हिंसा समय के साथ समाप्त नहीं होती, बल्कि समाज की स्मृति में जीवित रहती है।

4. ***Can You Hear Me?***

इस कृति में महिलाओं की आवाज़, उनकी सामाजिक पहचान तथा मौन के राजनीतिक अर्थों को अभिव्यक्त किया गया है। कलाकार यह दर्शाती हैं कि समाज में अनेक बार स्त्रियों की पीड़ा को अनसुना कर दिया जाता है। यह कृति स्त्री-अधिकार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के पक्ष में एक महत्वपूर्ण कलात्मक हस्तक्षेप है।

भारतीय समकालीन कला में नलिनी मलानी का योगदान

नलिनी मलानी का योगदान अनेक स्तरों पर महत्वपूर्ण है। उन्होंने भारतीय समकालीन कला को केवल नई तकनीकों से समृद्ध नहीं किया, बल्कि उसके वैचारिक आधार को भी व्यापक बनाया।

1. बहुमाध्यमीय कला का विकास

नलिनी मलानी उन अग्रणी भारतीय कलाकारों में हैं जिन्होंने वीडियो इंस्टॉलेशन, डिजिटल एनीमेशन, ध्वनि, प्रकाश और शैडो-प्रोजेक्शन को कलात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। इससे भारतीय समकालीन कला में नए प्रयोगों को प्रोत्साहन मिला।

2. नारीवादी दृष्टिकोण को सशक्त बनाना

उनकी कला का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष स्त्री-अस्मिता है। उन्होंने महिलाओं को केवल सौंदर्य के विषय के रूप में नहीं, बल्कि संघर्षशील, विचारशील और परिवर्तनकारी शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया। उनकी कृतियाँ पितृसत्तात्मक व्यवस्था की आलोचना करती हैं तथा लैंगिक समानता का समर्थन करती हैं।

3. सामाजिक सरोकारों की अभिव्यक्ति

नलिनी मलानी की कला युद्ध, विस्थापन, सांप्रदायिक हिंसा, पर्यावरणीय संकट, मानवाधिकार तथा लोकतंत्र जैसे विषयों को केंद्र में रखती है। उनकी कलाकृतियाँ दर्शकों को सामाजिक उत्तरदायित्व का बोध कराती हैं।

4. मिथक और इतिहास का पुनर्पाठ

उन्होंने महाभारत, रामायण, यूनानी मिथकों तथा शेक्सपीयर के साहित्यिक पात्रों का प्रयोग समकालीन संदर्भों में किया। इस प्रकार उन्होंने मिथकों को आधुनिक सामाजिक विमर्श से जोड़ते हुए उन्हें नई अर्थवत्ता प्रदान की।

5. वैश्विक स्तर पर भारतीय कला की प्रतिष्ठा

नलिनी मलानी की कृतियाँ विश्व के प्रमुख संग्रहालयों, कला दीर्घाओं तथा अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनियों में प्रदर्शित हुई हैं। वे भारतीय समकालीन कला की वैश्विक पहचान बनाने वाली प्रमुख कलाकारों में सम्मिलित हैं। उनके कार्यों ने यह सिद्ध किया कि भारतीय कला स्थानीय विषयों के माध्यम से भी वैश्विक मानवीय प्रश्नों को प्रभावी ढंग से व्यक्त कर सकती है।

समालोचनात्मक मूल्यांकन

नलिनी मलानी की कला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह सौंदर्य और सामाजिक चेतना का संतुलित समन्वय प्रस्तुत करती है। उनकी कलाकृतियाँ दर्शकों को केवल आकर्षित नहीं करतीं, बल्कि उन्हें सोचने के लिए बाध्य भी करती हैं। उन्होंने भारतीय कला को पारंपरिक चित्रकला की सीमाओं से बाहर निकालकर बहुमाध्यमीय अभिव्यक्ति की ओर अग्रसर किया।

कुछ आलोचकों का मत है कि उनकी कृतियाँ अत्यधिक प्रतीकात्मक होने के कारण सामान्य दर्शक के लिए जटिल प्रतीत होती हैं। फिर भी कला-जगत में यह व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है कि उनकी प्रतीकात्मकता ही उनकी सबसे बड़ी शक्ति है, क्योंकि वह प्रत्येक दर्शक को अपनी दृष्टि से अर्थ ग्रहण करने का अवसर प्रदान करती है।

निष्कर्ष

नलिनी मलानी भारतीय समकालीन कला की उन विशिष्ट कलाकारों में हैं जिन्होंने कला को सामाजिक परिवर्तन और मानवीय संवेदना का प्रभावी माध्यम बनाया। विभाजन की स्मृतियाँ, स्त्री-अस्मिता, युद्ध, विस्थापन, हिंसा तथा सामाजिक न्याय जैसे विषय उनकी कला के केंद्र में हैं। उन्होंने वीडियो इंस्टॉलेशन, शैडो आर्ट और डिजिटल माध्यमों के प्रयोग से भारतीय कला को नई तकनीकी और वैचारिक दिशा प्रदान की।

उनकी कला भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं को आधुनिक दृष्टिकोण से पुनर्परिभाषित करती है तथा यह सिद्ध करती है कि कला केवल सौंदर्य का विषय नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का माध्यम भी हो सकती है। राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उनकी उपलब्धियों ने भारतीय समकालीन कला की प्रतिष्ठा को सुदृढ़ किया है। इसलिए नलिनी मलानी का योगदान भारतीय कला इतिहास में स्थायी और अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाएगा।

संदर्भ सूची

1. हुड्डा, मीनाक्षी, और अनामिका चौरेड़। "नलिनी मालानी : कला के संदर्भ में।" *Journal of Emerging Technologies and Innovative Research (JETIR)*, खंड 5, अंक 6, जून 2018, पृ. 549-557.

Art Orbit - Volume 02, No 04, April 2026,, PP 83-86 (Total PP 04)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/ZKXG4636

2. https://thewire.in/the-arts/nalini-malanis-show-at-the-venice-biennale-refuses-to-let-you-scroll-past-violence
3. https://www.hindustantimes.com/cities/mumbai-news/a-brush-with-nalini-malani-s-resistance-art-101773514064439.html
4. https://www.indiatoday.in/magazine/leisure/story/20260511-the-retelling-nalini-malanis-of-woman-born-2904427-2026-05-01

https://artorbit.in/
Art Orbit - Volume 02, No 04, April 2026, PP 87-90 (Total PP 04)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/FIWC3830

SYMBOLIC TRADITIONS IN INDIAN VISUAL ARTS: IN THE CONTEXT OF ABSTRACT ART
(भारतीय दृश्य कलाओं में प्रतीक परंपराएँ : अमूर्त कला के संदर्भ में)

Jyotsna [a]*

[a] *Research student, Department of Fine Arts, Dr. Shakuntala Mishra National Rehabilitation University, Mohan Road, Lucknow, Uttar Pradesh*
[a] *Email: Jyotsna.lu.1992@gmail.com*

Abstract

Symbols have held a very important place in the tradition of Indian visual arts. Since ancient times, artists have expressed invisible emotions and ideas through visual forms. In Indian art, the lotus, tree, sun, wheel, dot, mandala, and various geometric shapes are not just decorative elements; they are symbols of life, creation, balance, and spiritual consciousness. These symbols are connected to the religious faith, philosophical thinking, and cultural experiences of Indian society.

In the context of abstract art, the expression of these symbols becomes even deeper and more subtle. Abstract art doesn't involve clear depictions of real forms; instead, emotions and energy are conveyed through color, line, and structure. Modern Indian artists have given traditional symbols new perspectives and forms. For example, the 'dot' is considered the center of creation and a sign of cosmic power, while mandalas and geometric arrangements help experience focus, concentration, and inner peace.

In this way, Indian abstract art acts as a bridge between tradition and modernity. It re-establishes ancient symbolic traditions in a contemporary context and connects them to global art discourse. This characteristic of Indian visual art gives it a distinct identity, where cultural continuity and creative innovation are seen together.

In Indian visual arts, symbolic traditions are not just heritage of the past, but they are still alive and relevant today. Abstract art has given a new form and interpretation to traditional symbols, establishing them in a contemporary context. This makes it clear that in Indian art, tradition and modernity are not opposed but complement each other. Through symbols, the artist expresses a more inner experience and spiritual consciousness outwardly.

Therefore, it can be said that Indian abstract art maintains the continuity of symbolic traditions while giving them a new identity in the global art world.

भारतीय दृश्य कलाओं की परंपरा में प्रतीकों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है। प्राचीन काल से ही कलाकारों ने दृश्य रूपों के माध्यम से अदृश्य भावों और विचारों को अभिव्यक्त किया है। भारतीय कला में कमल, वृक्ष, सूर्य, चक्र, बिंदु, मण्डल और विभिन्न ज्यामितीय आकृतियाँ केवल सजावटी तत्व नहीं हैं, बल्कि वे जीवन, सृष्टि, संतुलन और आध्यात्मिक चेतना के प्रतीक हैं। ये प्रतीक भारतीय समाज की धार्मिक आस्था, दार्शनिक चिंतन और सांस्कृतिक अनुभवों से जुड़े हुए हैं।

अमूर्त कला के संदर्भ में इन प्रतीकों की अभिव्यक्ति और भी गहन तथा सूक्ष्म हो जाती है अमूर्त कला में वास्तविक आकृतियों का स्पष्ट चित्रण नहीं होता, बल्कि रंग, रेखा और संरचना के माध्यम से भाव और ऊर्जा को व्यक्त किया जाता है। आधुनिक भारतीय कलाकारों ने पारंपरिक प्रतीकों को नई दृष्टि और रूप प्रदान किया है। उदाहरण के रूप में 'बिंदु' को सृजन का केन्द्र और ब्रह्मांडीय शक्ति का संकेत माना गया है, जबकि मण्डल और ज्यामितीय विन्यास ध्यान, एकाग्रता और आन्तरिक शांति का अनुभव कराते हैं।

इस प्रकार भारतीय अमूर्त कला परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु का कार्य करती है। यह प्राचीन प्रतीक परंपराओं को समकालीन संदर्भ में पुनः स्थापित करती है और उन्हें वैश्विक कला विमर्श से जोड़ती है। भारतीय दृश्य कला की यह विशेषता उसे विशिष्ट पहचान प्रदान करती है, जहाँ सांस्कृतिक निरन्तरता और सृजनात्मक नवाचार एक साथ दिखाई देते हैं।

भारतीय दृश्य कलाओं में प्रतीक परंपराएँ केवल अतीत की धरोहर नहीं हैं, बल्कि वे आज भी जीवित और प्रासंगिक हैं। अमूर्त कला ने पारंपरिक प्रतीकों को नया रूप और नई व्याख्या देकर उन्हें समकालीन संदर्भ में स्थापित किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय कला में परंपरा और आधुनिकता विरोधी नहीं बल्कि एक दूसरे की पूर्क है। प्रतीकों के माध्यम से कलाकार बाहरी रूप से अधिक आंतरिक अनुभव और आध्यात्मिक चेतना को व्यक्त करता है।

अतः कहा जा सकता है कि भारतीय अमूर्त कला प्रतीक परंपराओं की निरंतरता को बनाये रखते हुए उन्हें वैश्विक कला जगत में नई पहचान प्रदान करती है।

Keywords: Symbol, abstract expression, cultural tradition, spirituality

https://artorbit.in/
Art Orbit - Volume 02, No 04, April 2026, PP 87-90 (Total PP 04)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/FIWC3830

प्रतीक, अमूर्त अभिव्यक्ति, सांस्कृतिक परंपरा, आध्यात्मिकता

----

* Corresponding author.

भारतीय कला की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसकी प्रतिकात्मकता है। भारतीय समाज में प्रतीकों का उपयोग केवल कला तक सीमित नहीं है, वे जीवन के हर क्षेत्र–धर्म, संस्कृति, अनुष्ठान, वास्तुकला, संगीत और साहित्य में उपस्थित है। 'ओम', 'स्वस्तिक', 'कमल', 'चक्र', 'त्रिशूल', 'नदी', 'वृक्ष', 'मण्डल' आदि प्रतीक केवल दृश्य चिन्ह पाश्चात्य कला में अमूर्ता को 20वीं सदी की देन माना जाता है, परन्तु भारतीय परंपरा में अमूर्ता का विचार बहुत पहले से मौजूद रहा है। उपनिषदों में ब्रह्म को निराकार बताया गया है, बौद्ध दर्शन में शून्यता का सिद्धांत है: तांत्रिक परंपरा में यन्त्र और मण्डल अमूर्त प्रतीकों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। प्रतीक और परम्पराएं अमूर्त कला के अभिन्न अंग हैं, जो ज्ञान, कला और सामाजिक प्रथाओं के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते हैं।

प्रागैतिहासिक काल में ही हम अमूर्त कला को स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं कि मानव प्रतीकों का प्रयोग शुरू कर चुके थे उनमें गुफाओं की भित्ति चित्र पर बने शिकार के दृश्य, ज्यामितीय आकृतियाँ और प्रतीकों के माध्यम से अपनी भावनाओं, विश्वासों और सामुदायिक जीवन को व्यक्त किया, जो उनके अमूर्त चिंतन और रचनात्मकता की शुरुआत का प्रमाण है। भारत की गुफा चित्रकला, विशेषकर भीमवेतका के चित्र, मानव और प्रकृति के सम्बन्ध को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं। शिकार के दृश्य केवल घटनाएं नहीं, बल्कि जीवन यापन और सामूहिकता के संकेत हैं।

सिन्धु घाटी सभ्यता में मुहरों पर बने पशु आकृतियाँ और 'योगी पुरुष' की मुद्रा प्रतीकात्मक अर्थ रखती है। पीपल का वृक्ष, बैल और मातृदेवी की आकृतियाँ उर्वरता और शक्ति के प्रतीक माने जाते हैं।

बौद्ध कला में प्रारम्भिक काल में बुद्ध की प्रतिमा नहीं बनाई गई, उनकी उपस्थिति को चक्र, पद्मविन्दु, अशोक स्तम्भ या खाली सिंहआसन द्वारा व्यक्त किया गया। यह अमूर्त प्रतीक का उत्कृष्ट उदाहरण है। मध्यकालीन मंदिर स्थापत्य में प्रतीकों का व्यापक प्रयोग हुआ। मंदिर का शिखर मेरु पर्वत का प्रतीक है। गर्भगृह, ब्रह्मांड का केन्द्र माना जाता है। तांत्रिक कला में 'श्री यंत्र' एक जटिल ज्यामितीय संरचना है जो ब्रह्मांडीय ऊर्जा का प्रतीक है। यह पूर्णांतः अमूर्त होते हुए भी गहरे आध्यात्मिक अर्थ रखता है। मुगल और राजस्थानी लघुचित्रों में भी प्रतीकात्मकता दिखाई देती है। रंगों का चयन भाव के अनुसार किया जाता था–लाल प्रेम और शक्ति का, नीला अनन्त का, पीला भक्ति का प्रतीक माना जाता था।

ऐसे ही हम भारतीय लोक कला में भी प्रतीकों के प्रयोग को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। भारतीय लोक कला में प्रतीक सहज और जीवन से जुड़े होते हैं। मधुबनी चित्रों में मछली उर्वरता, समृद्धि, सौभाग्य और प्रबुरता के प्रतीक के रूप में बनाया जाता है। यह जीव मिथिला संस्कृति और दैनिक जीवन का अभिन्न हिस्सा है। मछली बनाने के प्रमुख कारण, शुभ संकेत, प्रजनन क्षमता, प्रकृति का संतुलन, पौराणिक महत्व और सकारात्मक ऊर्जा प्रमुख हैं। मधुबनी पेंटिंग्स में मछली को जोड़े में बनाया जाता है जो जीवन के प्रवाह और संतुलन को दर्शाता है। इन लोक परंपराओं में अमूर्ता स्वाभाविक रूप से उपस्थित है क्योंकि कलाकार यथार्थवादी चित्रण की अपेक्षा भाव और अर्थ को महत्व देता है।

20वीं सदी में जब भारतीय कलाकारों ने आधुनिकता को अपनाया तब उन्होंने पाश्चात्य अमूर्त कला से संवाद स्थापित किया परन्तु अपनी जड़ों से जुड़े रहे। आधुनिक भारतीय अमूर्त कलाकारों ने भारतीय प्रतीकों को नये में प्रस्तुत किया। बिन्दु मण्डल, रेखा, रंग और ज्यामितीय संरचनाएं उनके चित्रों में प्रमुख रूप से दिखाई देती हैं। इन कलाकारों के लिये अमूर्तता केवल शैली नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अनुभव की अभिव्यक्ति है। भारतीय पंरपरा में 'निराकार' की अवधारणा पहले से मौजूद थी, इसलिये आधुनिक अमूर्त कला यहाँ स्वाभाविक रूप से विकसित हुई।

भारतीय कला में रंगों का गहरा प्रतीकात्मक महत्व है। लाल शक्ति प्रेम और ऊर्जा, नीला अनंतता और दिव्यता, पीला ज्ञान और पवित्रता, सफेद शान्ति और सत्य का। कलाकार जब भी किसी विशेष रंग का प्रयोग करता है तो वह केवल दृश्य प्रभाव के लिये नहीं, बल्कि भावात्मक संकेत के लिये भी होता है। रेखाएं भी प्रतीकात्मक होती है ऊर्ध्व रेखा आध्यात्मिक उन्नति का संकेत दे सकती है जबकि वृत्त अनंतता और पूर्णता का प्रतीक हो सकता है।

भारतीय दर्शन और अमूर्तता का गहरा संबंध हैं। यह मुख्य रूप से सत्य, आत्मा, मोक्ष और चेतना जैसे अमूर्त विषयों की खोज है, न कि केवल दृश्य जगत का अध्ययन। आज के समय में भारतीय अमूर्त कला वैश्विक मंच पर अपनी पहचान बना चुकी है। समकालीन कलाकार पारंपरिक प्रतीकों को आधुनिक, सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों से जोड़ रहे हैं। डिजिटल माध्यमों में भी मण्डल, बिन्दु और ज्यामितीय संरचनाएँ नये रूप में सामने आ रही हैं। इससे स्पष्ट होता है कि प्रतीक परंपरा स्थिर नहीं बल्कि निरंतर विकसित होते रहने वाली प्रक्रिया है। भारतीय कला की विशिष्टता उसकी प्रतीकात्मकता में निहित है। यहाँ प्रत्येक आकृति, मुद्रा, रंग और रेखा के पीछे कोई न कोई अर्थ विद्यमान रहता है। स्वस्तिक, कमल, चक्र, त्रिशूल, नदी, मण्डल आदि प्रतीक केवल सजावटी तत्व नहीं है बल्कि वे भारतीय जीवन दर्शन के प्रतिनिधि हैं।

भारतीय दृश्य कलाओं में प्रतीक परंपरा का अध्ययन यह दर्शाता है कि यहाँ अमूर्तता केवल आधुनिकता प्रयोग नहीं है। यह परंपरा की निरंतरता है।

भारतीय दृश्यकला में प्रतीक परंपरा का इतिहास अत्यन्त प्राचीन और समृद्ध रहा है। भारतीय कला की आत्मा ही प्रतीकों में निहित है। यहाँ प्रतीक केवल सजावटी तत्व नहीं रहे बल्कि वे आध्यात्मिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक विचारों के वाहक रहे हैं। सिंधु घाटी सभ्यता की मुहरों से लेकर बौद्ध स्तूपों, गुप्तकालीन मूर्तिकला, मध्यकालीन मंदिर शिल्प और आधुनिक चित्रकला तक प्रतीकों का निरंतर प्रयोग होता रहा है। इस निरंतरता को देखते हुये यह स्पष्ट होता है कि भारतीय कला में प्रतीक परंपरा केवल एक शैलीगत विशेषता नहीं, बल्कि एक गहरी सांस्कृतिक चेतना का रूप है। अमूर्त कला के संदर्भ में भारतीय प्रतीक परंपरा का विश्लेषण करने पर यह सामने आता है कि भारतीय कला में अमूर्तन कोई पश्चिम से आयातित विचार नहीं है। भारतीय परंपरा में निराकार, निर्माण और आध्यात्मिक तत्वों को व्यक्त करने के लिये सदैव प्रतीकात्मक और अमूर्त रूपों का सहारा लिया गया।

https://artorbit.in/
Art Orbit - Volume 02, No 04, April 2026,, PP 87-90 (Total PP 04)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI :   10.67073/FIWC3830

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय प्रतीक परंपरा और अमूर्त कला के बीच एक गहरा और स्वाभाविक संबंध है। भारतीय कला में अमूर्तन बाहरी प्रभाव का परिणाम नहीं, बल्कि आंतरिक सांस्कृतिक विकास का स्वाभाविक विस्तार है प्रतीक यहाँ दृश्य और अदृश्य के बीच सेतु का कार्य करते हैं। वे प्रत्यक्ष रूप से किसी वस्तु का वित्रण नहीं करते, बल्कि उसके अर्थ और अनुभूति का प्रकट करते हैं। भारतीय दृश्यकला में प्रतीक परंपरा और अमूर्त कला का संबंध दर्शाता है कि भारतीय कला समय के साथ बदलती रही है, परन्तु अपनी मूल आध्यात्मिक और सांस्कृतिक चेतना को बनाये रखती है। प्रतीक यहाँ केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान की अभिव्यक्ति और भविष्य की संभावनाओं का आधार है।

इस प्रकार भारतीय अमूर्त कला को समझने के लिये उसके प्रतीकात्मक आधार को समझना है बिना प्रतीकों की पृष्ठभूमि के अमूर्त कला अधूरी प्रतीत होती है। भारतीय कला की विशिष्टता इसी में है कि वह दृश्य से अदृश्य की ओर, रूप से अरूप की ओर, भौतिक से आध्यात्मिक की ओर यात्रा करती है। यही यात्रा उसे विश्व कला परंपरा में एक विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

संदर्भ सूची

1. अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कलाः वाराणसी चौरवंबा विद्या भवन।
2. कपूर, गीता भारतीय समकालीन कला पर विचार, नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन।
3. अग्रवाल, आर.ए. भारतीय कला परिचय।

Art Orbit - Volume 02, No 04, April 2026, PP 87-90 (Total PP 04)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI :   10.67073/FIWC3830

https://artorbit.in/
Art Orbit - Volume 02, No 04, April 2026, PP 91-95 (Total PP 05)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/VSPE4062

FAMILY TRADITION AND THE ART OF SINGING, INSTRUMENTAL MUSIC, AND DANCE: A DETAILED COMPARATIVE STUDY (**घराना परंपरा और गायन–वादन–नृत्य कला : एक विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन**)

Shreya Sucheta Patwardhan.[a]* **Prof. Dr. Sangeeta Bapat**[b]

[a] *Research Scholar Guru - Pt. Nityanand Haldipur. Shri N. D. Thakarsi Women's University, Churchgate, Mumbai.*

[b] *Head of Music Department, Pt. Nityanand Haldipur. Shri N. D. Thakarsi Women's University, Churchgate, Mumbai.*

[a]*Email: atwardhanshreya16@gmail.com*

Abstract

In the tradition of Indian classical music and dance, the word 'Gharana' does not just signify stylistic differences; it represents an entire cultural system. A Gharana tradition reflects the vibrant form of Indian art tradition in which knowledge, practice, spirituality, social structure, lineage, and artistic vision are harmoniously integrated. This tradition has developed especially in North Indian (Hindustani) music and Kathak dance, although similar tendencies can be found in other art forms as well.

Gharanas originated as a result of medieval royal patronage, courtly culture, and the guru-disciple tradition. Each Gharana is an extension of a particular teacher or master's style, approach to ragas, sense of rhythm, technical skill, and aesthetic perception. Over time, these Gharanas have developed their distinct performance methods, teaching systems, creative discipline, and musical philosophy.

In the field of singing, the Gwalior, Kirana, Agra, Jaipur-Atrauli, Patiala, Rampur-Sahaswan, and Bhendibazaar traditions have added distinctive dimensions to raga development, alap technique, taan structure, and rhythm. In instrumental music, the Seniya tradition, Maihar gharana, Imdadkhani (Etawa) gharana, along with Delhi, Ajrada, Lucknow, Banaras, and Punjab tabla traditions, have enriched technical structure, the definition of 'baj', and tala practices. In dance, especially Kathak, the Lucknow, Jaipur, and Banaras gharanas have created a distinct identity in body movement, expression, and rhythmic complexity.

This research paper looks at the gharana tradition not just in a historical context, but also from a comparative perspective – that is, it analyzes the similarities and differences of the gharana concept in singing, instrumental music, and dance. It suggests that the gharana tradition has preserved various dimensions of Indian art while also encouraging creative freedom. Although in the modern era, institutional education, recording technology, and globalization have made the boundaries of gharanas more flexible, their core essence still remains an integral part of Indian cultural consciousness.

भारतीय शास्त्रीय संगीत एवं नृत्य की परंपरा में "घराना" शब्द केवल शैलीगत भिन्नता का द्योतक नहीं, बल्कि यह एक संपूर्ण सांस्कृतिक तंत्र का प्रतिनिधित्व करता है। घराना परंपरा भारतीय कला-परंपरा के उस जीवंत स्वरूप को प्रकट करती है जिसमें ज्ञान, साधना, आध्यात्मिकता, सामाजिक संरचना, वंशपरंपरा तथा कलात्मक दृष्टि का अद्वितीय समन्वय विद्यमान है। यह परंपरा विशेष रूप से उत्तर भारतीय (हिंदुस्तानी) संगीत एवं कथक नृत्य में सुव्यवस्थित रूप से विकसित हुई, यद्यपि अन्य कलात्मक धाराओं में भी समान प्रवृत्तियाँ मिलती हैं।

घरानों का उद्भव मध्यकालीन राजाश्रय, दरबारी संस्कृति तथा गुरु-शिष्य परंपरा के परिणामस्वरूप हुआ। प्रत्येक घराना किसी विशिष्ट आचार्य या उस्ताद की शैली, राग- दृष्टि, लय-चेतना, तकनीकी कौशल तथा सौंदर्यबोध का विस्तार है। समय के साथ इन घरानों ने अपनी विशिष्ट प्रस्तुति पद्धति, शिक्षण प्रणाली, रचनात्मक अनुशासन और सांगीतिक विचारधारा विकसित की।

गायन के क्षेत्र में ग्वालियर, किराना, आगरा, जयपुर-अत्रौली, पटियाला, रामपुर-सहसवान, भेंडीबाजार आदि घरानों ने राग-विस्तार, आलाप-तंत्र, तान-संरचना और लयकारी में विशिष्ट आयाम जोड़े। वादन में सेनिया परंपरा, मैहर घराना, इमदादखानी (इटावा) घराना, दिल्ली, अजराड़ा, लखनऊ, बनारस और पंजाब तबला घरानों ने तकनीकी संरचना, 'बाज' की परिभाषा तथा ताल-व्यवहार को समृद्ध किया। नृत्य में विशेषतः कथक के लखनऊ, जयपुर और बनारस घरानों ने अंग-संरचना, भावाभिव्यक्ति और तालगत जटिलता में विशिष्ट पहचान निर्मित की।

यह शोध-पत्र घराना परंपरा को केवल ऐतिहासिक संदर्भ में नहीं, बल्कि तुलनात्मक दृष्टि से भी देखता है – अर्थात् गायन, वादन और नृत्य में घराना अवधारणा की समानताओं एवं भिन्नताओं का विश्लेषण करता है। इसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि घराना परंपरा भारतीय कला के विविध

Art Orbit - Volume 02, No 04, April 2026, PP 91-95 (Total PP 05)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/VSPE4062

आयामों को संरक्षित करते हुए रचनात्मक स्वतंत्रता को भी प्रोत्साहित करती रही है। आधुनिक युग में यद्यपि संस्थागत शिक्षा, रिकॉर्डिंग तकनीक और वैश्वीकरण के प्रभाव से घराना सीमाएँ लचीली हुई हैं, तथापि उसकी मूल आत्मा आज भी भारतीय सांस्कृतिक चेतना का अभिन्न अंग बनी हुई है।

Keywords: Yaghrana tradition, Hindustani music, Guru-shishya tradition, Singing, instrumental, dance study, Cultural structure, Classical music.

घराना परंपरा, हिंदुस्तानी संगीत, गुरु-शिष्य परंपरा, गायन, वादन, नृत्य अध्ययन, सांस्कृतिक संरचना,शास्त्रीय संगीत

∗ Corresponding author.

प्रस्तावना

भारतीय शास्त्रीय संगीत केवल एक कला-विधा नहीं, अपितु भारतीय सभ्यता की आध्यात्मिक, दार्शनिक तथा सांस्कृतिक चेतना का सजीव प्रतिबिंब है। इसकी जड़ें वैदिक काल तक जाती हैं, जहाँ सामवेद में स्वर, लय और उच्चारण की पद्धति का व्यवस्थित स्वरूप मिलता है। कालान्तर में यह परंपरा मंदिरों, आश्रमों, राजदरबारों और जनजीवन के विविध स्तरों से होती हुई मध्यकाल में एक संगठित कलात्मक प्रणाली के रूप में विकसित हुई।

इसी ऐतिहासिक विकास-क्रम में "घराना" परंपरा का उदय हुआ। घराना भारतीय संगीत की वह विशिष्ट संरचना है जिसमें शैली, परंपरा, तकनीक और सौंदर्य-दृष्टि का समन्वित विकास एक वंशानुगत अथवा गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुरक्षित रखा गया।

घराना केवल भौगोलिक पहचान नहीं है; यह एक सांगीतिक दृष्टिकोण (Musical Aesthetic Vision) है। प्रत्येक घराना राग की व्याख्या, स्वर-संयोजन, लय-प्रयोग, अलंकरण, भाव-प्रस्तुति और तकनीकी संरचना के स्तर पर अपनी विशिष्टता स्थापित करता है।

मध्यकालीन भारत में विशेषतः मुगल काल के दौरान दरबारी संरक्षण ने संगीत को संरचनात्मक आधार प्रदान किया। इसी काल में विभिन्न क्षेत्रों में विकसित शैलियाँ क्रमशः "घराना" के रूप में प्रतिष्ठित हुईं। उदाहरणार्थ, ग्वालियर घराना, किराना घराना, आगरा घराना, जयपुर-अतरौली घराना तथा पटियाला घराना ने ख्याल गायकी को विविध आयाम प्रदान किए।

इसी प्रकार वादन और नृत्य में भी विशिष्ट परंपराएँ विकसित हुईं, जैसे मैहर घराना, इमदादखानी घराना, दिल्ली घराना तथा कथक में लखनऊ घराना और जयपुर घराना।

अतः घराना प्रणाली भारतीय कला के भीतर परंपरा और नवाचार के संतुलन का उत्कृष्ट उदाहरण है।

गायन घरानों का अधिक विस्तृत विवेचन :-

गायन घरानों की चर्चा में सर्वप्रथम ग्वालियर घराना का उल्लेख आवश्यक है। यह घराना ख्याल गायकी का प्राचीनतम और आधारभूत स्वरूप माना जाता है। ग्वालियर शैली में राग की शुद्धता और प्रस्तुति की स्पष्टता पर विशेष बल दिया जाता है।

इसकी गायकी में बंदिश का अत्यंत महत्त्व है, क्योंकि बंदिश को ही राग की आत्मा माना जाता है। राग-विस्तार संतुलित और क्रमबद्ध होता है। आलाप अपेक्षाकृत संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट होता है और तानों का विन्यास सीधा तथा व्याकरणसम्मत होता है।

ग्वालियर घराना :-

ग्वालियर घराने की विशेषता यह है कि यह शास्त्रीय अनुशासन का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसमें भावनात्मक अतिशयोक्ति की अपेक्षा संरचनात्मक संतुलन अधिक दिखाई देता है। इसी कारण इसे अनेक विद्वान "मानक ख्याल शैली" भी कहते हैं।

किराना घराना :-

इसके विपरीत किराना घराना स्वर-साधना की चरम परिणति का प्रतीक है। किराना घराने की गायकी में विलंबित लय का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है, जिससे राग के प्रत्येक स्वर को विस्तारपूर्वक उद्घाटित करने का अवसर मिलता है। इस शैली में मींड का प्रयोग अत्यंत सूक्ष्म और प्रभावशाली होता है। स्वर के सूक्ष्म अंतरालों अर्थात श्रुतियों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। यहाँ राग का विकास मानो ध्यान की प्रक्रिया हो, जिसमें श्रोता धीरे-धीरे स्वर-सागर में डूबता चला जाता है। किराना शैली में तानों की अपेक्षा आलाप और स्वर-लहरियों का अधिक महत्त्व है। यह घराना संगीत को आध्यात्मिक अनुभूति के स्तर तक ले जाता है।

आगरा घराना :-

आगरा घराना की गायकी में ध्रुपद परंपरा की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। इसमें स्वर की दृढ़ता, गले की शक्ति और लय के साथ सघन संवाद प्रमुख है। बोल-बाँट इसकी विशेष पहचान है, जिसमें बंदिश के शब्दों को विभिन्न लय-रूपों में प्रस्तुत किया जाता है। गमक प्रधान तानों का प्रयोग इसकी विशिष्टता है। आगरा शैली में प्रस्तुति गंभीर और प्रभावशाली होती है। इसमें एक प्रकार की ओजस्विता और पुरुषार्थ दिखाई देता है। यदि किराना शैली ध्यानमग्न है, तो आगरा शैली ऊर्जावान और प्रभावोत्पादक है।

जयपुर-अतरौली घराना :-

जयपुर-अतरौली घराना अपनी जटिल राग-रचनाओं और बौद्धिक संरचना के लिए प्रसिद्ध है। इस घराने में संकर तथा दुर्लभ रागों की प्रस्तुति की जाती है। राग- विस्तार अत्यंत योजनाबद्ध और विश्लेषणात्मक होता है। तानों में गणितीय संरचना दिखाई देती है और प्रत्येक चरण तार्किक अनुक्रम का पालन

करता है। जयपुर शैली में राग के विभिन्न आयामों को क्रमिक रूप से उद्घाटित किया जाता है। इस शैली को समझने के लिए श्रोता में भी एक प्रकार की बौद्धिक सजगता आवश्यक होती है।

यह घराना संगीत के विश्लेषणात्मक पक्ष को सुदृढ़ करता है।

पटियाला घराना :-

पटियाला घराना की गायकी में चपलता और आकर्षण का विशेष स्थान है। तानों की तीव्र गति, सरगम का प्रभावी प्रयोग और स्वर की लचक इसकी पहचान है। पटियाला शैली में भाव और तकनीक का सुंदर समन्वय मिलता है। ठुमरी अंग का प्रभाव भी इसकी प्रस्तुति में दिखाई देता है, जिससे इसमें कोमलता और लावण्य का समावेश होता है। यह शैली श्रोता को तत्काल प्रभावित करने की क्षमता रखती है।

रामपुर-सहसवान घराना :-

यह घराना मूलतः ग्वालियर परंपरा से प्रभावित है, परंतु इसमें तानों की जटिलता और लयकारी का विशेष विकास हुआ। इसकी गायकी में स्पष्ट उच्चारण, तानों की गति और सुदृढ़ स्वरसाधना दिखाई देती है।

रामपुर दरबार के संरक्षण में यह शैली विकसित हुई। इसमें बोल-तान और सरगम का व्यवस्थित प्रयोग मिलता है। राग-विस्तार में मध्यम और द्रुत लय का प्रभावी उपयोग इसकी विशेषता है।

भेंडीबाज़ार घराना :-

यह घराना अपनी विशिष्ट स्वर-साधना और सरगम प्रयोग के लिए प्रसिद्ध है। इसमें स्वरों की स्पष्टता और मधुरता पर विशेष बल दिया जाता है।

भेंडीबाज़ार शैली में सरगम का लयबद्ध और रचनात्मक उपयोग मिलता है। इसमें स्वरों की शुद्धता और गणितीय संरचना का संतुलन दिखाई देता है।

मेवाती घराना :-

यह घराना भक्ति-रस प्रधान शैली के लिए प्रसिद्ध है। इसमें भावात्मक प्रस्तुति और शब्दोच्चारण की स्पष्टता पर बल दिया जाता है।

इस घराने में बंदिश के शब्दों की अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति की जाती है। आलाप और तान दोनों में संतुलन दिखाई देता है। भक्ति और आध्यात्मिकता इसकी प्रमुख पहचान है।

इंदौर घराना :-

इंदौर घराना अपेक्षाकृत आधुनिक परंपरा है। इसकी गायकी में अत्यंत सूक्ष्म स्वर- व्यवहार, शांत आलाप और लय में गहराई दिखाई देती है।

इस घराने में राग-विस्तार अत्यंत नियंत्रित और चिंतनशील होता है। यह शैली बौद्धिक एवं अंतर्मुखी प्रकृति की है।

वादन घरानों का अधिक विस्तृत विवेचन :-

भारतीय शास्त्रीय संगीत की वादन परंपरा उतनी ही समृद्ध और विविधतापूर्ण है जितनी गायन परंपरा। यदि गायन में स्वर साधना प्रमुख है, तो वादन में स्वर की पुनर्सृष्टि, ध्वनि की संरचना और तकनीकी अभिव्यक्ति का कौशल प्रमुख हो जाता है।

वादन घरानों का विकास मुख्यतः दो आधारों पर हुआ – पहला, ध्रुपद अंग से प्रेरित गंभीर शैली; दूसरा, गायकी अंग से प्रेरित कोमल और अभिव्यक्तिपूर्ण शैली। समय के साथ इन दोनों धाराओं ने विभिन्न वाद्यों के माध्यम से स्वतंत्र पहचान स्थापित की।

सेनिया घराना :-

सेनिया घराना भारतीय वादन परंपरा की अत्यंत प्राचीन और प्रतिष्ठित शाखा है। इसका संबंध तानसेन की वंश परंपरा से जोड़ा जाता है। यह परंपरा मूलतः ध्रुपद शैली से प्रेरित है और इसकी प्रस्तुति में गंभीरता, स्थिरता और आध्यात्मिक गाम्भीर्य दिखाई देता है।

सेनिया वादन शैली में राग का विस्तार क्रमिक और अनुशासित ढंग से किया जाता है। आलाप का विकास अत्यंत गंभीर और विस्तृत होता है, जिसमें स्वर की शुद्धता और ध्वनि की गूंज पर विशेष ध्यान दिया जाता है। आलाप के बाद जोड़ और झाला की संरचना क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत की जाती है। इस शैली में अनावश्यक अलंकरण से बचा जाता है और राग के मूल स्वरूप को प्रमुखता दी जाती है। ध्रुपद की परंपरा से प्राप्त गाम्भीर्य इस घराने की पहचान है।

तकनीकी दृष्टि से इस घराने में मिज़राब या वादन तकनीक का संयमित प्रयोग किया जाता है। स्वर को दीर्घता प्रदान करने और स्थिरता बनाए रखने पर बल दिया जाता है। यह शैली श्रोता को ध्यानमग्न अनुभव प्रदान करती है।

मैहर घराना :-

मैहर घराना आधुनिक वादन परंपराओं में अत्यंत प्रभावशाली स्थान रखता है। इसका विकास मध्यप्रदेश के मैहर क्षेत्र में हुआ। इस घराने की विशेषता यह है कि इसमें अनेक वाद्यों – जैसे सितार, सरोद, बांसुरी आदि – में समान रूप से दक्षता विकसित की गई।

मैहर शैली में राग-विस्तार संतुलित और संरचनात्मक होता है। आलाप में गंभीरता है, किंतु उसके बाद के भागों में रचनात्मकता और तकनीकी विविधता दिखाई देती है।

इस घराने ने वादन में बहुआयामी दृष्टिकोण विकसित किया। इसमें ध्रुपद अंग की गहराई और ख्याल अंग की लचक का समन्वय मिलता है।

https://artorbit.in/
Art Orbit - Volume 02, No 04, April 2026, PP 91-95 (Total PP 05)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/VSPE4062

तकनीकी दृष्टि से इस घराने में गतों का सुसंगठित विन्यास, लयकारी का संतुलित प्रयोग और तानों की स्पष्टता प्रमुख है। इस शैली में राग की आत्मा को सुरक्षित रखते हुए नवाचार भी किया गया। मैहर घराना वादन परंपरा में परंपरा और आधुनिकता के संतुलन का उत्कृष्ट उदाहरण है।

इमदादखानी घराना :-

इमदादखानी घराना, जिसे इटावा घराना भी कहा जाता है, गायकी अंग आधारित वादन शैली के लिए प्रसिद्ध है। इस घराने की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें वाद्य पर गायन की अनुभूति उत्पन्न की जाती है।

इस शैली में मींड का अत्यंत सूक्ष्म और लंबा प्रयोग किया जाता है, जिससे स्वर आपस में जुड़कर एक प्रवाहमयी धारा का निर्माण करते हैं। इमदादखानी वादन में स्वर की कोमलता, लचक और भावात्मकता प्रमुख है। इसमें तानों की गति की अपेक्षा

स्वर की अभिव्यक्ति अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है। इस घराने की प्रस्तुति में श्रोता को ऐसा अनुभव होता है मानो वाद्य गा रहा हो।

यही इसकी विशिष्ट पहचान है। इसमें राग का विकास अत्यंत भावपूर्ण और सौम्य ढंग से किया जाता है।

शाहजहाँपुर घराना :-

शाहजहाँपुर घराना मुख्यतः सरोद वादन की परंपरा से जुड़ा है। इस घराने की शैली में ध्रुपद अंग की गंभीरता और स्वर की गहराई दिखाई देती है।

इस शैली में राग का विस्तार गाम्भीर्यपूर्ण और संयमित होता है। मंद्र सप्तक में स्वर विस्तार को विशेष महत्व दिया जाता है। तकनीकी रूप से इसमें स्पष्ट प्लकिंग और नियंत्रित तान संरचना मिलती है। यह शैली राग की पारंपरिक संरचना को बनाए रखने पर बल देती है।

लखनऊ घराना :-

लखनऊ घराना सरोद वादन में कोमलता और मधुरता के लिए जाना जाता है। इसमें गायकी अंग का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। स्वर की लचक और भावात्मकता को प्रमुखता दी जाती है।

इस घराने में तानों की गति अपेक्षाकृत संतुलित रहती है और स्वर-विस्तार में नफासत दिखाई देती है। यह शैली श्रोता को मधुर और सौम्य अनुभव प्रदान करती है।

बनारस बांसुरी परंपरा :-

बनारस बांसुरी परंपरा में गायकी अंग की प्रधानता है। बांसुरी पर राग का विकास अत्यंत मधुर और प्रवाहमयी ढंग से किया जाता है।

इस शैली में मंद्र और मध्यम सप्तक में स्वर-विस्तार का विशेष महत्त्व है। लय और स्वर का संतुलन बनाए रखते हुए राग को भावपूर्ण रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

बनारस की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का प्रभाव इसकी प्रस्तुति में स्पष्ट दिखाई देता है।

कश्मीरी संतूर परंपरा :-

संतूर मूलतः कश्मीरी लोक वाद्य था, किंतु इसे शास्त्रीय मंच पर स्थापित करने के बाद इसकी स्वतंत्र वादन परंपरा विकसित हुई। संतूर वादन में स्वर-उत्पादन की तकनीक अन्य वाद्यों से भिन्न है, क्योंकि इसमें तारों पर छोटी हथौड़ियों से प्रहार किया जाता है।

इस शैली में राग का विस्तार विशेष तकनीकी सावधानी से किया जाता है, क्योंकि मींड की पारंपरिक संभावना सीमित होती है। इसलिए स्वर-संयोजन और लय-रचना पर विशेष ध्यान दिया जाता है। संतूर वादन में ध्वनि की झंकार और तालबद्ध संरचना प्रमुख भूमिका निभाती है।

तबला घरानों का विस्तृत विश्लेषण :-

पहले दिए गए घरानों के अतिरिक्त लय संरचना की विविधता को समझना आवश्यक है।

दिल्ली, अजराड़ा, लखनऊ, बनारस, पंजाब – ये पाँच प्रमुख घराने हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ उप-परंपराएँ भी विकसित हुई हैं, किंतु मूल संरचना इन्हीं पाँच पर आधारित मानी जाती है।

कथक नृत्य :-

कथक नृत्य में लखनऊ घराना भावप्रधान और नजाकतयुक्त शैली का प्रतीक है, जबकि जयपुर घराना तालप्रधान और ऊर्जावान है। बनारस घराना में पारंपरिक गत और नाटकीयता का समावेश है।

समग्रतः यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो गायन में स्वर की साधना, वादन में ध्वनि की संरचना और नृत्य में देह-अभिव्यक्ति की प्रधानता होती है। तीनों में लय केंद्रीय तत्व है, किंतु उसकी अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न माध्यमों से होती है। घराना परंपरा भारतीय कला की विविधता को संरक्षित रखते हुए उसकी एकता को सुदृढ़ करती है। यह प्रणाली परंपरा और नवाचार के संतुलन का अद्वितीय उदाहरण है।

निष्कर्ष :-

भारतीय शास्त्रीय संगीत की परंपरा में “घराना” केवल शैलीगत भिन्नता का नाम नहीं है, बल्कि वह एक जीवंत सांस्कृतिक संस्था है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचरित ज्ञान, साधना, अनुशासन और सौंदर्यबोध का प्रतीक है। गायन, वादन और नृत्य – इन तीनों क्षेत्रों में विकसित घराने भारतीय संगीत-संस्कृति की बहुरंगी चेतना को अभिव्यक्त करते हैं।

https://artorbit.in/
Art Orbit - Volume 02, No 04, April 2026, PP 91-95 (Total PP 05)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/VSPE4062

इनका अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भारतीय संगीत का विकास किसी एकरेखीय प्रक्रिया का परिणाम नहीं, बल्कि विविध प्रवृत्तियों, क्षेत्रीय संस्कृतियों, दार्शनिक दृष्टिकोणों और साधना-पद्धतियों के समन्वित प्रयास का फल है।

गायन घरानों में जहाँ एक ओर राग-विस्तार की पद्धति, स्वर-साधना की विशिष्टता, तानों की संरचना और लय-प्रयोग की शैलीगत विविधता दिखाई देती है, वहीं दूसरी ओर वादन घरानों में "बाज" की परंपरा, ध्वनि-उत्पादन की तकनीक, मींड, गमक, झाला और गत-रचना की विशिष्ट प्रणाली एक स्वतंत्र कलात्मक पहचान निर्मित करती है।

इसी प्रकार नृत्य घरानों में अंग-संचालन, मुद्राओं की व्याख्या, भावाभिव्यक्ति, तालबद्धता और नृत्य-रचना की संरचना में सूक्ष्म भेद दृष्टिगोचर होते हैं। इन तीनों क्षेत्रों की घराना-परंपराएँ मिलकर भारतीय कला-संस्कृति की समग्रता को मूर्त रूप देती हैं।

घरानों के तुलनात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक घराना अपनी मूल आत्मा में परंपरा का संरक्षक होते हुए भी समय के साथ परिवर्तनशील रहा है।

उदाहरणस्वरूप, कुछ घरानों ने ध्रुपद अंग की गंभीरता को बनाए रखा, तो कुछ ने ख्याल की लचक और भावप्रधानता को अपनाया; कुछ वादन घरानों ने गायकी अंग को आत्मसात किया, तो कुछ ने तकनीकी कौशल और लय-चमत्कार को प्रधानता दी।

नृत्य घरानों में भी कहीं नज़ाकत और अभिव्यक्ति की कोमलता प्रमुख रही, तो कहीं पाद-संचालन की जटिलता और ताल-संरचना की शक्ति प्रमुख रही।

इस प्रकार घरानों की विविधता किसी विभाजन का संकेत नहीं, बल्कि सृजनात्मक बहुलता का द्योतक है।

यह भी स्पष्ट होता है कि घराना-प्रणाली का मूल आधार "गुरु-शिष्य परंपरा" है।

घराना केवल भौगोलिक क्षेत्र से नहीं बनता, बल्कि दीर्घकालिक साधना, विशिष्ट प्रशिक्षण-पद्धति और वैचारिक अनुशासन से निर्मित होता है। गुरु द्वारा शिष्य को दिया गया ज्ञान केवल तकनीकी अभ्यास तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उसमें जीवन- दृष्टि, सौंदर्यबोध और आध्यात्मिक साधना का समावेश होता है। इस दृष्टि से घराना एक सांस्कृतिक विरासत है, जो शास्त्रीयता के संरक्षण के साथ-साथ रचनात्मकता को भी प्रोत्साहित करता है।

आधुनिक समय में वैश्वीकरण, संचार-माध्यमों के विस्तार और मंचीय प्रयोगों के कारण घरानों की सीमाएँ अपेक्षाकृत लचीली हुई हैं। आज कलाकार विभिन्न घरानों की विशेषताओं को आत्मसात करते हुए एक समन्वित शैली का निर्माण कर रहे हैं। किंतु इसके बावजूद प्रत्येक घराने की मूल पहचान, उसका सौंदर्यशास्त्र और उसकी पारंपरिक संरचना आज भी प्रासंगिक है। यह तथ्य दर्शाता है कि घराना-प्रणाली केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की सृजनात्मक प्रक्रिया का भी आधार है।

गायन, वादन और नृत्य – इन तीनों की समेकित दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि घरानों ने भारतीय शास्त्रीय संगीत को संरचना, अनुशासन और विशिष्टता प्रदान की है। यदि घराने न होते, तो संभवतः शैलीगत विविधता का यह समृद्ध स्वरूप विकसित न हो पाता। घरानों ने न केवल कला को संरक्षित किया, बल्कि उसे गहराई, विस्तार और सांस्कृतिक गरिमा भी प्रदान की।

अंततः यह निष्कर्ष स्थापित होता है कि घराना-परंपरा भारतीय शास्त्रीय संगीत की आत्मा है। यह परंपरा परंपरागतता और नवोन्मेष, अनुशासन और स्वतंत्रता, क्षेत्रीयता और सार्वभौमिकता – इन सभी के मध्य संतुलन स्थापित करती है। भविष्य में भी यदि इस परंपरा का संरक्षण संवेदनशीलता और शोधपरक दृष्टि से किया जाए, तो भारतीय शास्त्रीय संगीत की यह बहुमूल्य धरोहर निरंतर विकसित होती रहेगी और विश्व-संगीत के परिप्रेक्ष्य में अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखेगी।

संदर्भ सूची

1. चौबे, सुशील कुमार. (2018). संगीत के घरानों की चर्चा. उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान.
2. मिश्र, शाम्भुनाथ. (2014). हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की घराना परंपरा. सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार.
3. पं. नित्यानंद हळदीपूर जी का लिया हुवा साक्षात्कार.
4. पं. बसंत काबरा जी का लिया हुवा साक्षात्कार .

https://artorbit.in/
Art Orbit - Volume 02, No 04, April 2026, PP 91-95 (Total PP 05)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI :   10.67073/VSPE4062

https://artorbit.in/
Art Orbit - Volume 02, No 04, April 2026, PP 97-100 (Total PP 04)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/FNGD5518

VISUAL CULTURE OF INDUS VALLEY CIVILIZATIONS: A CASE STUDY OF HARAPPAN ART OBJECTS IN THE NATIONAL MUSEUM, NEW DELHI

Gaurav Kumar[a]*

[a] *Phd Scholar, Department of History of Art, INDIAN INSTITUTE OF HERITAGE (Formerly National Museum Institute) (Deemed to be University), Ministry of Culture, Government of India, Noida (U.P.), India*

[a]*Email: - kumarggaurav.205@gmail.com*

Abstract

This research paper focuses on 'Community, Skill, and Identity within the Folk Craft Traditions of the Chitrakoot Region,' with the primary objective of analyzing the intrinsic relationship between folk painting and craft arts within a socio-cultural context. The study aims to identify craft elements (such as ornamentation and patterns) within folk paintings, examine their technical, structural, and symbolic commonalities, and understand the role of the artist.

Employing a qualitative research methodology, the study sheds light on several significant crafts and art forms of the Chitrakoot region. Prominent among these are *Shijar* stone (a translucent stone found in the Ken River of Banda district, used for jewelry making), woodcraft (comprising sculptures, furniture, and daily-use items crafted from *Sheesham* and mango wood), and *Vedu* craft (baskets and fans made from bamboo). Additionally, the local tradition of *Mahabuliya*, along with other styles such as *Madhubani*, *Warli*, *Gond*, and *Phad* painting, have also been discussed.

Within folk paintings, craft elements manifest in the form of structural similarities (such as repetition and symmetry) and shared symbolism (depicting figures such as Lord Rama, the Sun, and trees). Both art forms are deeply intertwined with the local environment, natural resources, and community traditions.

The conclusion posits that folk painting draws inspiration from craft traditions, while craft arts lend narrative depth to painting. From a contemporary perspective—and despite the influence of market forces and modern media—these art forms remain emblematic of the region's folk life and culture, underscoring the imperative need for their preservation and documentation.

यह शोध-पत्र **'चित्रकूट परिक्षेत्र के लोक शिल्प परम्परा में समुदाय, कौशल और पहचान'** पर केंद्रित है, जिसका मुख्य उद्देश्य लोक चित्रकला और शिल्प कला के अंतर्निहित संबंधों को सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में विश्लेषित करना है। शोध का लक्ष्य लोक चित्रों में शिल्प तत्वों (जैसे अलंकरण और पैटर्न) की पहचान करना, उनकी तकनीकी, संरचनात्मक और प्रतीकात्मक समानताओं का अध्ययन करना, और कलाकार की भूमिका को समझना है।

गुणात्मक शोध प्रविधि का उपयोग करते हुए, अध्ययन ने चित्रकूट परिक्षेत्र के कई महत्वपूर्ण शिल्पों और कलाओं पर प्रकाश डाला है। इनमें बांदा जिले की केन नदी में मिलने वाला **शिजर पत्थर** (आभूषण निर्माण हेतु अर्द्धपारदर्शी), **काष्ठ शिल्प** (शीशम और आम की लकड़ी से निर्मित मूर्तियाँ, फर्नीचर और दैनिक उपयोग की वस्तुएँ), और बांस से निर्मित **वेडू शिल्प** (टोकरियाँ, पंखे) प्रमुख हैं। इसके साथ ही, स्थानीय परंपरा **महाबुलिया** और अन्य शैलियों जैसे मधुबनी, वारली, गोंड तथा फड़ चित्रकला का भी उल्लेख किया गया है।

लोक चित्रों में शिल्प तत्व, संरचनात्मक समानता (जैसे दोहराव और सममिति) और साझा प्रतीकात्मकता (जैसे भगवान राम, सूर्य, वृक्ष) के रूप में स्पष्ट होते हैं। दोनों कलाएँ स्थानीय वातावरण, प्राकृतिक संसाधनों और सामुदायिक परंपराओं से गहराई से जुड़ी हैं।

निष्कर्ष में बताया गया है कि लोक चित्रकला शिल्प परंपरा से प्रेरणा लेती है, जबकि शिल्प कला चित्रकला को कथात्मक विस्तार देती है। समकालीन परिप्रेक्ष्य में, बाजार और आधुनिक माध्यमों के प्रयोग के बावजूद, ये कलाएँ क्षेत्रीय लोक जीवन और संस्कृति की परिचायक हैं, जिनके संरक्षण और प्रलेखन की आवश्यकता है।

Keywords: Chitrakoot: Folk Crafts, Community, Skills, Identity

चित्रकूट लोक शिल्प, समुदाय, कौशल, पहचान

---

* Corresponding author.

In Visual Culture Artifacts and pictures are made in such a way that often reflects the social-cultural aspect of the society. The society that made up of different belief systems, culture, traditions, and societal norms are often depicted in the Artistic productions. Representation is the way a person interprets symbols and images of a culture. These pictorial representations and artifacts explain why the world is the way it is. So, in a way we can say that this visual culture is not just a part of our everyday chore, but it is what makes our days an integral part of the society.

In this paper the visual culture of Indus Valley Civilizations will be highlighted through the art objects (terracotta statue, bronze statue, and seal) which are the assets of National Museum, New Delhi and is currently on display at the Harappan Art Gallery. The Indus Valley civilization is the first great city or urban culture known in India. It is also one of the oldest civilizations of the world.

In the vast Indus River plains (located in what is today Pakistan and western India), under layers of land and mounds of dirt, archaeologists discovered the remains of a 4,600-year-old city. A thriving, urban civilization had existed at the same time as Egyptian and Mesopotamian states. Historians often divide the whole civilization in three phases i.e. The Early, Mature and the Later phase. Where the Mature Indus valley civilization has been dated to 2500 BCE. The Cities of Indus Valley civilization, Mohenjo-Daro discovered in 1922, and Harappa discovered in 1826 represents a remarkable discovery of culture. In the last century, thousands of ancient settlements have been discovered along the banks of the Indus River and the now-dried-up Saraswati River. Many of those settlements were at least as large as Mohenjo Daro. This civilization was believed to be well flourished by the year 2500 BCE. By that time there were many cities out of which 1052 cities like Lothal, Kalibangan, Rakhigarhi etc. were found as of now and the historians say that the population in the cities like Harappa and Mohenjo-Daro crossed one million each. The cities were very well-planned including drainage facilities. The ancient Indus systems of sewerage and elaborated drainage systems that were developed and used in cities throughout the Indus region were far more advanced. Indus cities are noted for their urban planning, a technical and political process concerned with the use of land and design of the urban environment. They are also noted for their baked brick houses, water supply systems, and clusters of large, non-residential buildings.

Scholars have opined that Indus Valley inhabitants were taking a practical approach to supporting the common, secular, living people. Sure, they believed in an afterlife and employed a system of social divisions. But they also believed resources were more valuable in circulation among the living than on display or buried underground. Indus Valley Civilization's visual culture can be seen in Indian Culture, which is based on sites, society, religion/belief, trade etc. Which is a major era in the visual cultural history of India.

Visual culture often gives us a sense of a particular class, country, place, and time. Even in the Indus Valley civilization, whatever we got during excavation, or which are displayed in the National Museum, New Delhi, makes one aware of the visual culture or prevailing trends or beliefs of that period for thousands of years.

Terracotta sculptures are more in numbers than either stone or metal in the Indus valley and animal figures far human representations, shows greater realism as well. Here is the Unique statue (Fig.1) ahead of its time which shows the rudiment, creation, and motherhood. The standing **animal-faced pregnant female** terracotta figure was acquired through excavations from Mohenjo-Daro. The roughly hand modelled red coloured figurine is on display in the National Museum, New Delhi. It is well-baked, and the traces of red chocolate slip suggest that this figurine was coloured red. The red colour used by Harappan terracotta artist was red heamatite. The clay Artists of present day also use red ochre or red lead (sindura) mixed with water or oil for colouring their sacred clay images. The red color has been used since the middle late lower palaeolithic age (Acheulean period). The earliest evidence of red ochre is from Husangi in Karnataka which is ascribed to the late advanced Acheulean period (100000 B.P). The figure has thick hips and a potbelly. The most notable feature is that the breasts are not shown. The figure does not have any arms attached to the shoulders. There is one thorough hole on its shoulders for inserting moveable arms. There are two other holes on the back between the joints of two hips and another below the abdomen. The two thick short legs are closed together. The face of the figure is pinched and elongated which looks like that of an animal. The eyes are marked by an incised method. The figure is hand modelled and the workmanship is rough. The human figure with an animal head and animal figures with human head is a common characteristic in the Harapan art. The figure has a globular pot-shaped belly like that of a pregnant woman. The terracotta figurine does not have the clear female features. Archaeologists recorded many terracotta figurines which are found during the excavations.

Second object is made of Bronze which shows the standing posture, dancing posture and perhaps modeling. The most remarkable and important among the bronze statue of Indus Valley civilization is Dancing Girl or the first **Dancing Girl** (Fig.2) of the world, which is published in thousands of articles, journal, and research works. Two dancing girls of Bronze were discovered through Early excavation done by Marshall (1931) at Mohenjo-Daro of which the superb one is now in the exhibition of Harappan Gallery of National Museum, New Delhi, and the other one which is crude and unfinished is in the collection of National Museum of Karachi. Both have arsenic contents as a mixture of Bronze and appear like Proto Dravidian tribal girls in appearance. The national museum, New Delhi, dancing girl is the best and is unsurpassed in art style among all the bronze figurines so far discovered from the Indus sites. This figurine is one of the highest achievements of the metal artists of Indus Valley civilization.

https://artorbit.in/
Art Orbit - Volume 02, No 04, April 2026, PP 97-101 (Total PP 05)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/FNGD5518

She stands in a dancing pose, the right hand of this figure rests on the hip, the left arm covered almost entirely with bangles, hangs loosely and seems relaxing from the posture of legs. It appears she is taking some rest after a long dance performance. The bangles in one hand remind us that she was probably a follower (worshipper) of Murugan or Rudra Siva, and she might have performed her dance in the Rudra or Shiva temple. The tribal head of this figure is provocatively tilted and gives the impression of a proto- Dravidian tribal girl. The large eyes, flat nose, head, and bunched Curly hair remind us of a tribal Dravidian girl. The Dancing in Dravidian temples of South India is still being done by dancing girls (Devadasis) which shows a continuous tradition of proto-Dravidian i.e., Indus Valley civilization people in Dravidian speaking region of south India. Karama *vinithi* dance festival is still prevailing among girls of Santhal in Bihar who associate themselves with *Sapta* Sindhu. The Santhal tribe also speaks Dravidian words. Various dance style like Bharat Natyam, etc., were prevailing in South India since Sangam age through Chola period and in modern period. The modelling of the back, hips and buttocks, in a small figure like this is quite effective. She is nude but her necklace is decorated with three beads. Similar types of necklaces made of carnelian and agate beads were discovered through excavations at Mohenjo-Daro. The hair of this figure plaited in an elaborate manner. True to the above facts, the arms and the legs are disproportionately elongated. This Bronze figure was cast by the cire perdue or lost wax solid cast process. This Bronze figure is amongst the most publicized objects of Indus valley, and this is the rarest among all the art objects of South Asia. Her over - burdening ornaments are interesting which divert the attention from her nudeness. The head is slightly drawn backwards with its eyes semi-open which gives an impression of her dancing pose. A kind of Haughtiness reigns over her face and its hair-do style resembles the style of Bharat Natyam dancer of Dravidian region of South India and of the hair styles of chola Bronzes and sculptures of south India. It is interesting to note here that Bharat Natyam is the earliest evidence of dance and of the female metal image of India. The figure of the dancing girl is the earliest evidence of dance and also of female figures in metal, which is found in India, and perhaps in the world. Besides this, there is one more dancing torso of stone from Harappa. Based on the discovery of these three dance sculptures of Indus valley, we may conclude that dancing was an important item for recreation and entertainment of Indus valley or Harappan people. This small piece in dancing pose is the most remarkable in early Indian art and its casting technique is also note-worthy.

The maximum number of female figurines were discovered from Mohenjo-Daro which gives us an idea that the city of Mohenjo-Daro was female dominated and the females were having very high status in the society. Many of these figurines represent the mother goddess or fertility cult. Few male figurines in yoga posture from Harappa and Mohenjo-Daro are the earliest example of yoga practice in India.

While bronze statues were being built along with terracotta statues, which shows the clear evidence that those people worshipped mother goddess, the name includes Parvati, Sakti. Shiva lingam and Swastika symbols were also found from excavated areas which are on display at National Museum New Delhi.

During the Indus Valley civilization, the medium of trade was seals. These seals have engraved images depicting many festivals, sacred trees and valor, from extinct animals to the invisible, which have their own different beliefs and intentions. Seals and sealing are small tablets used by the people of the mature Harappan in recording the personal identity. All the seals have the decoration with or without inscription, cut in intaglio in negative form. When a seal is impressed on wet clay or plasticine, or any plastic material is called sealing. They form the main body of the pictorial records of those times, offering tantalizing prospects of better knowledge of the Indus Valley civilization with their intriguing inscriptions.

There are many seals displayed in the National Museum, New Delhi but here we discuss famous seals which show Power, Heroism and the representation of God/king like yogic or Pashupati. A seal called Gilgamesh seal is a famous seal among the viewers of Harappan Art Gallery as well as among the art students. This seal is from Mohenjo-Daro, dates back c. 2700-2000 B.C., Showing **man and tigers** (Fig.3). It shows a male figure standing in between two standing roaring tigers. On the top, there is an inscription of 7 pictograms. The image of a roaring tiger is of great interest. These horned deities were identified with proto -Siva. The association of horn with Siva is not uncommon. In the Mahabharata, there is a reference to this effect (Mahabharata, *Vanparva* 88.8). These figures closely resemble Sumerian Gilgamesh, the hunter-hero. A similar motif appears on a Mesopotamian seal as well. There are three seals from Mohenjo-Daro which show the Gilgamesh story. This scene can be compared with the uninscribed Gilgamesh seal showing a royal figure holding lions (Toissier 1984) dated around 521-450 BC i.e., the Achaemenid period. Pathak called this scene a pictorial representation of the Atharvaveda hymn IV 3. (Pathak 1999). Another famous seal is **Pasupati or proto- Shiva seal** (Fig.4) which is visually treated for the Hindu and animal lovers. This unique square steatite seal with upper field have 6 pictograms, depicts the figure of a god seated in yogic posture on his heels with knees apart. He has three faces and is surrounded by animals. The crowning-head has two horns. His hands fully covered with bangles, rest on the knees. On the top, there is an inscription. Three seals of this style were reported from Mohenjo-Daro. Siva is called Pasupati or the lord of animals. Siva is also assigned the role of an ascetic *Mahayogi* sitting cross-legged in profound meditation. The horned head-dress is an intrusive element from west Asia. This representation may be the forerunner of later Siva. The Pasupati figure is also painted on a big jar of Padri and on pots from Kunal, Kotdiji, Burzhom and other early Harappan sites dated up to Ca 2800 B.C. Siva had been in worship in south Asia from the early Indus Valley civilization period. The seal found resembles the god, Shiva.

These seals offer a few noteworthy clues to the religious practices of those remote times, but their full significance will be known Only when the script has been deciphered.

https://artorbit.in/
Art Orbit - Volume 02, No 04, April 2026, PP 97-101 (Total PP 05)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/FNGD5518

After the Case study of Harappan Art Gallery's Object of National Museum, New Delhi, in context of visual culture It can be believed that when the world didn't know how to dance or pose like a runaway supermodel, the artist(s) of Indus Valley civilization produced the first dancing girl in Bronze which is the perfect specimen for the modelling industry, from worshipping the nature or mother goddess to the roots of Hinduism which lies in Indus civilization, there is a trace of Religious practices and beliefs are represented in symbols, terracotta figurine, bronze statue and narrative scene depicted on seals, pottery (not discussed here) and other objects. The most important narrative scenes show sacrifice and worship. The worship of trees and deities in trees suggests that most rituals were carried out in the open or at the foot of a sacred tree such as the banyan, pipal or acacia. Terracotta figurines of possible horned male deities and elaborately decorated females may represent deities or worshippers. Stone sculptures of male figures who are sitting on one bent leg, with the other leg bent in front have been widely referred to as representing deities or priest-kings but the specific kneeling posture suggests a supplicant rather than a deity. Abstract symbols such as the swastika and endless knot motifs, and other enigmatic symbolic objects are also thought to reflect ideology, but their precise meaning cannot be known without the aid of readable texts. Indus Valley civilization religion or socio-ritual belief systems reflect a multiplicity of levels ranging from local cults to what could be called an established "state" religion practiced by the elites of the different cities and emulated by the lower classes. Examples of local cults may be seen in regional styles of female figurines or ritual symbols on pottery. The practice of a more unified "state" religion may be reflected in the widespread use of the mythical "unicorn" as a motif on seals and other objects. The distinctive offering stands found on unicorn seals also suggests a uniform ritual. Many narrative seals depict ceremonies or rituals that may have been part of state sponsored religious festivals. Though these available artifact Indus valley civilization's Visual culture is very rich and have many dimensions and perspective.

Eventually, though, around 1900 BCE, this prosperity ended. The integrated cultural network collapsed, and the civilization became fragmented into smaller regional cultures. Trade, writing, and seals all disappeared from the area. There is no evidence for warfare.

what happened to the largest ancient civilization, the most advanced Bronze Age civilization and the civilization which has accounted for over five million population at its peak. The contemporary civilizations left some clues of disappearing while the Indus Valley civilization left questions and curiosity.

Fig.1.Pregnant animal headed female,
Bronze,10.5x5x2.5 cm, Acc.No.Hr.5721/195, National Museum, New Delhi.
Ca 2700-2100 B.C., Mohenjo-Daro,
Terracotta,9.4x4 cm., Acc No Vs 33/256,
Neg No 233-78, National Museum, New Delhi.

Fig.2.Dancing girl, Ca 2700 B.C., Mohenjo-Daro,

Fig.3. Man fighting with two tigers and Harrapan inscription, c. 2700-2000 B.C., Mohenjo-Daro, steatite,5/4"X5/4"X5/16, Acc.No.DK.12596/145, National Museum New Delhi

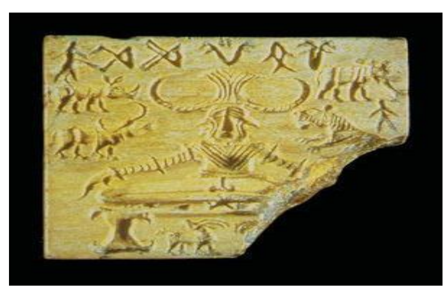

Fig.4. Pasupati seal, c.2700-2000 B.C., Mohenjo-Daro, Steatite 22/16"X 22/16"X1/4", Acc.no. D.K.5175/143, National Museum, New Delhi

https://artorbit.in/
Art Orbit - Volume 02, No 04, April 2026, PP 97-101 (Total PP 05)
ISSN : 3107- 670X (Online)
Frequency – Monthly
DOI : 10.67073/FNGD5518

Bibliography

1. Asthana, S., Pre-harappan cultures of India and its Border Land, New Delhi,1985.
2. Atre, S., Harappan seal motifs and the Animal Retinue, B.D.C. 49:43-51, Poona.1990
3. Buddha, Prakash, Rigveda and Indus valley civilization, Hoshiarpur.1996
4. Banerji, Arundhati, Early Indian terracotta art, pp.25-31, New Delhi.1994.
5. Chang, K.C., Art Myth and Ritual, Harvard.1983.
6. Tomory, Edith, A History of Fine Arts in India and the west, orient black swan.
7. Pathak, P.V., On the nature of Indus valley seals Problems and prospects in M.E., Vol. LXXIV N2, pp.71-77, Poona,1999.
8. Renou, L. The Civilization of Ancient India. Calcutta, Susil Gupta (India) Pvt. Ltd., 1959.
9. Sharma, D.P., Harappan seals, sealing and copper tablet, New Delhi.1999.
10. Sharma, D.P., Harappan Art, Sharada Publishing House, Delhi,2007.